Amar Nath Goll

Amar Nath

वर्ष ५, खण्ड २,] १ जौलाई १९२४ ई० [संख्या १, पूर्ण संख्या ५५

रणबाँकुरे हसरत।

इस मास में मौलाना हसरत मोहानी के यरोडा कारागार से मुक्त हो जाने की खबर है।

सम्पादक—
बालकृष्ण शर्म्मा।

वार्षिक मूल्य ५) रु०] [एक अङ्क का मूल्य ॥) आना

सञ्चालक—
शिवनारायण मिश्र वैद्य,

प्रकाश पुस्तकालय—कानपुर

शीघ्र ही प्रकाशित होगा ! शीघ्र ही प्रकाशित होगा !!

का

भगवान "तिलक"-विशेषांक

शीघ्र ही प्रकाशित होगा !!!

यह अंक रायल साइज़ के ¼ आकार के २०० पृष्ठों का होगा।

इस अंक में भगवान तिलक तथा उनके मित्र-परिवारों के भिन्न-भिन्न स्थिति के बहुत से चित्र रहेंगे।

इस अंकमें एक तीनरंगा बढ़िया चित्र रहेगा, जिसको आप देखते ही रह जायंगे।

पत्रका कवर पेज बड़े ही सुन्दर, मोटे, चिकने और स्वच्छ कागज़ पर तीन रंगोंमें छापा जावेगा।

इस अंकमें लोकमान्य के सम्बन्ध की छोटी-बड़ी सभी बातें रहेंगी।

इस अंकमें भारत के प्रसिद्ध नेता तथा विद्वान लेखकों के लेख रहेंगे।

इस अंक में हिन्दी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताएं रहेंगी।

इस अंक की छपाई बढ़िया, मोटे और स्वच्छ एण्टिक कागज पर होगी। सारांश, हिन्दी भाषा की अखबारी दुनियां में यह अंक एक आदर्श अंक होगा। इतना होने पर भी इसका मूल्य सर्व-साधारण के लिए केवल ८ आना ही रहेगा, पर 'प्रणवीर' के स्थायी ग्राहकों को मुफ्त मिलेगा।

विज्ञापनदाताओं को सूचना

इस अंक की हम १०००० संख्या निकाला चाहते हैं। यह अंक भारत के तमाम भागों में ज्यादा संख्या में बांटा जावेगा। इस लिए विज्ञापनदाताओं को चाहिए कि वे अभी से पत्र व्यवहार कर अपना कण्ट्राक्ट तय करलें। ऐसे अवसर बहुत कम मिलते हैं। विज्ञापन के नियम मंगाने पर मिल सकते हैं।

व्यवस्थापक,
'प्रणवीर', नागपुर

(१)—प्रभा प्रति अंग्रेजी मास की ठीक १ली ता० को प्रकाशित होती है।

(२)—डाक व्यय सहित भारत के लिए इसका वार्षिक मूल्य ५) रु० और छः मास का मूल्य २॥) है, वी० पी० खर्च ।-) अलग। विशेषांकों को छोड़कर प्रति अंक का मूल्य ॥) आठ आना है। हिन्दुस्तान के बाहर विदेश के लिए इसका मूल्य ६) या ६ शिलिंग है। पुराने अङ्क भी ॥) में मिलेंगे।

(३)—यद्यपि प्रभा का वर्ष जनवरी से शुरू होता है तथापि पाठकों की सुविधा के लिए विलायती मासिक पत्रों की भांति प्रभा का यह नियम है कि ग्राहक महाशय जिस महीने से 'प्रभा' के ग्राहक होंगे हम उन्हें उसी महीने से १२ मास तक 'प्रभा' भेजते रहेंगे। अर्थात् जो सज्जन 'प्रभा' के ग्राहक अप्रैल मास से होंगे उनकी सेवा में अगले वर्ष के मार्च मास तक भेजते रहेंगे। हां जो सज्जन प्रभा' की पिछली संख्यायें चाहेंगे उनकी सेवा में ॥) आठ आना फ़ी प्रति के हिसाब से भेज दी जाया करेंगी। इस नियम से 'प्रभा' के ग्राहक अन्यों की भांति अनिच्छा पूर्वक पिछली--संख्याओं के मासिक पत्र भी लेने के बोझ से बचेंगे।

(४)—पुरान ग्राहक महाशय, अपना मूल्य मनीआर्डर से भेजते समय कूपन पर ग्रा० नं० अवश्य लिख दिया करें। नवीन ग्राहकों को रु० भेजते समय कूपन पर "नयाग्राहक" यह शब्द ज़रूर लिखना चाहिए।

(५) यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो ग्राहकों को उचित है कि वे, उस का प्रबन्ध अपने डाकखानों से ही करालें, यदि ज्यादा अथवा अधिक काल के लिए पता बदलवाना हो तो स्पष्ट अक्षरों में हमें अपने ग्राहक नं० (जो पते के साथ हिन्दी में लिखा रहता है) लिखें, पता बदलवाते समय इस बात का ध्यान अवश्य रक्खें कि यदि फरवरी महीने की "प्रभा" का पता बदलवाना है तो जनवरी को १५ ता० तक हमारे पास पत्र अवश्य आ जाय।

(६) जिन सज्जनों को किसी मास की 'प्रभा उसी मास की १० ता० तक न मिले तो उन्हें पहले अपने डाक घर से पूछना चाहिए। और पता न लगे तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास-जिस महीने को संख्या न मिली हो उसके अगले महीने की १ तारीख तक भेजें। जांच कर उनको दूसरी संख्या भेज दी जायेगी। लेकिन इस अवधि के बाद जिनके पत्र आवेंगे उनको दूसरी संख्या तभी भेजी जायगी जब वे डाक महसूल सहित एक संख्या का मूल्य ॥)॥ पत्रके साथ भेजेंगे। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा, चाहे वह अगले महीने की १० ता०के भीतर ही आवें। प्रभा यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतः इस विषय में पहले डाकघर से ही पूंछताछ करना अच्छा होगा।

(७) जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का प्रबन्ध लेखक महाशय करदें। यदि चित्र के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो उसे प्रकाशक देंगे। लेखों के लिए यथोचित पुरस्कार दिया जायगा।

विज्ञापन दाताओं के लिए—

(८) यदि फरवरी मास की प्रभा में विज्ञापन छपाना है, तो २० दिन पहले अर्थात जनवरी मास की अधिक से अधिक १० तारीख तक पेशगी रु० और विज्ञापन आजाना चाहिए विज्ञापन बदलने के लिये भी यही नियम लागू है। एक कालम से कम विज्ञापन दाताओं को प्रभा विना मूल्य नहीं दी जाती।

विज्ञापन की दर यह होगी—एक मास

पूर्ण पृष्ठ या दो कालम	१६)
आधा पृष्ठ (या एक कालम)	८॥)
चौथाई पृष्ठ (या आधा कालम)	४॥)
टाइटिल का दूसरा पूरा पृष्ट	२२)
टाइटिल के दूसरे पृष्ठ के सामने का पृष्ठ	२०)
टाइटिल का तीसरा पृष्ठ	१८)
टाइटिल का अंतिम पृष्ठ	२२)

विस्तृत विज्ञापन दरें और नियमावली तथा क्रोड़पत्र बटाई की दरें और नियम एक पोस्टकार्ड भेज कर मंगाइये।

(१) रवीन्द्र गीताञ्जलि (कविता)—[श्री मदन-मोहन मिहिर ... आरम्भ में

(२) प्राचीन नगरराष्ट्रों के राजनैतिक परिवर्त्तन—[श्रीयुक्त गोवर्द्धनलाल एम० ए०, बी० एल० ३

(३) वीणालोक (कविता)—[काव्यतीर्थ श्री उदयशंकर भट्ट 'हृदय'... १२

(४) मेघदूत रहस्य—[श्रीयुक्त इलाचन्द्र जोशी १२

(५) मेरे प्रेम ! (कविता)—[श्रीयुक्त श्रीरत्न शुक्ल १७

(६) दो पुराने पत्र—[श्री गोकुलानन्दप्रसाद वर्मा १७

(७) अनोखा पागल—[श्री मोहनलाल महतो गयावाल वियोगी ... २१

(८) वंशीध्वनि या अशनि-निनाद !—[श्रीयुक्त राजबहादुर लमगोड़ा एम०ए०, एल-एल०बी० २१

(९) मतिराम और भूषण—[श्री अनूपशर्मा बी०ए० २३

(१०) डायरी के कुछ पृष्ठ—['सत्यवादी' सम्पादक श्रीयुक्त इन्द्र वेदालंकार विद्यावाचस्पति २४

(११) द्वन्द्वयुद्ध (कविता)—[श्री 'नवीन' २६

(१२) मेरा अफगानी जाकट (कहानी)—[प्रोफेसर श्यामसुन्दरलाल चोरड्या, एम० ए० २६

(१३) फुलझड़ियाँ (कविता)—[श्री 'विदग्ध' २८

(१४) नैपाल—[श्री सद्गुरुशरण अवस्थी बी०ए० २९

(१५) जाल-छिद्र—[श्रीकुँवर रामसिंह 'विशारद' तथा श्री सूर्यकरण पारीक 'विशारद' ४०

(१६) विपरीत चिकित्सा का विपरीत परिणाम-[श्री इकबाल वर्मा 'सेहर' ४१
(१७) भावमृग (कविता)--[श्रीयुक्त ब्रह्मेश्वर शर्मा ४७
(१८) भीषण हड़ताल! (कहानी)-[श्रीयुक्त 'प्राणदास' ४८
(१९) इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध बैङ्क की दो चार विचित्र बातें—[श्री रामनाथलाल 'सुमन' ५३
(२०) उफान (कविता)—[श्री 'नवीन' ५८
(२१) संसार प्रगति—जापान और अमेरिका, टर्की, फ्रान्स, ग्रेटब्रिटेन, जर्मनी, इराक, तिब्बत ५८
(२२) विचार प्रवाह—विप्लव के अग्निकुण्ड की चिनगारियाँ ... ६६
(२३) सामयिक साहित्यावलोकन ७१
(२४) सम्पादकीय टिप्पणियाँ—भविष्यवाणी की प्रतिमा, मार्च आन, रुद्ररूप ७४

चित्र-सूची

(१) रणबांकुरे हसरत मुखपृष्ठ
(१ क) नवाब नसीरुद्दीन हैदरशाह अवध की सवारी (बहुवर्ण) आरम्भ में
(२) छूत और अछूत (व्यङ्गचित्र) पृष्ठ ८ के सामने
(३) राधा और सखी पृष्ठ १६ के सामने
(४) चर्खे से स्वराज्य (व्यङ्गचित्र) " २४ "
(५) काठमांडू में 'Prime minister' की बांसकी कोठी ... ३०

(६) काठमांडू में मैदान ... ३०
(७) कवायद का मैदान ... ३१
(८) बीमार आदमीको टोकरी में ले जाना ३१
(९) भाट गांव का फाटक ३२
(१०) पीपल की जड़ों से बना हुआ देवस्थान ... ३२
(११) भूटिया मर्द और औरतों का नाच ३२
(१२) राजा 'मल्ल' की मूर्ति ... ३३
(१३) गरुड़ की मूर्ति पाटन में ३३
(१४) छिकला निकालना ... ३३
(१५) पाटन में एक राजा की कोठी ३३
(१६) भूटिया ... ३४
(१७) घुँसे ग्राम से बर्फीले पहाड़ों का दृश्य ... ३४
(१८) पाटन नगर का एक दृश्य ३५
(१९) त्रिशूली नदी का दृश्य ... ३६
(२०) भूटिया गंडक और त्रिशूली गंडक का संगम ... ३६
(२१) चन्द्र कालेज के अध्यापकगण ३७
(२२) गोसाईं कुण्ड का दूसरा दृश्य ३८
(२३) ताता पानी शावरू ग्राम के पास ३९
(२४) पाटन का एक मन्दिर ३९
(२५) पाटन में श्री विष्णु जी का मन्दिर और गरुड़ की मूर्ति ... ४०
(२६) उपाधिधारियों की दशा (व्यङ्गचित्र) ... ... पृष्ठ ४८ के सामने
(२७) दवा मतब में नहीं " " "

---

(२८) स्व० सर आशुतोष मुकर्जी ... ७५
(२९) स्व० सर आशुतोष चौधरी ... ७७
(३०) सर शंकरन् नायर ... ७९

कुछ चुनी हुई [अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है / है वह मुर्दा देश जहां साहित्य नहीं है] सर्वोत्तम पुस्तकें

राजनीतिक पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
देश की बात	२॥)
अगले सात साल	१)
आनन्द मठ (उप०)	॥।)
यंग इंडिया भाग १ (गाँधी)	६)
,, ,, २ ,,	१॥)
,, ,, ३ ,,	२)
हिन्द स्वराज्य (गाँधी)	।-)
असहयोग पर गाँधी	॥)
गाँधी के ५१ व्याख्यान और लेख	१)
स्वाधीन भारत (गाँधी)	॥।)
पंचरत्न (गाँधी)	१)
म० गाँधी का आदर्श	-)॥
मेरे जेल के अनुभव (गाँधी)	।=)
स्वतंत्रता का अधिकार (दास)	॥=)
प्रजा के अधिकार (सत्यमूर्ति)	॥)
स्वाधीनता के सिद्धान्त	१)
अरविन्द मंदिर में (अर० घोष)	॥।)
जातीयता (अरविन्द घोष)	।=)
पश्चिमी सभ्यता का दिवाला	।-)
म० टाल्सटाय के लेख	।=)
खूनी शासन (टाल्सटाय)	।)
टाल्सटाय के सिद्धान्त	१।)
राजा और प्रजा रवीन्द्र बा०	१)
स्वराज्य तत्व मीमांसा (रवींद्र)	।)
स्वराज्य पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर	।)
देशभक्तों की कारावास कहानी	२॥)
भारतीय राजनैतिक षड्यन्त्र	१)
सिपाही विद्रोह (२४ चित्र)	४)
भारतीय जेल	॥)
स्वाधीनता (मिल)	२)
साम्यवाद	३)
साम्यवाद	।=)
सत्याग्रह और असहयोग	१॥।)

चुने हुवे जीवन चरित्र

पुस्तक	मूल्य
राजा महेन्द्र प्रताप	१)
वीर केसरी शिवाजी	४)
सर्वश्रेष्ठ पुरुष गांधी	॥)
दलीपसिंह और पंजाब हरण	२)
देशबन्धु दास	१)
मोतीलाल नेहरू	॥।)
लो० तिलक की जीवनी	१॥)
पृथ्वीराज	१।)
सीता बनबास	॥)
राष्ट्रीय रत्नपंचक	१)
भारत के दस रत्न	।-)
काबूर (इटली का उद्धारक)	१)
कोलम्बस	॥।)
महात्मा गाँधी	४॥)
झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई	१।)
भारत भक्त एँड्रूज	२॥।)
सम्राट हर्ष वर्धन	॥)
पंजाब केसरी रणजीत सिंह	२।)
आत्मोद्धार बुकर टी०	१)
कांग्रेस के पिता ह्यूम	॥।)
शिवाजी	१।)
द्रोणाचार्य	।=)
संत जीवनी	॥)
प्रिंस बिस्मार्क (इन्द्र)	१॥)
अकबर	१)
केशव चन्द्र सेन	१≡)
वंकिम चन्द्र चटर्जी	१≡)
सम्राट चन्द्र गुप्त	।)
सर जगदीस चन्द्र बोस	।=)
कर्म क्षेत्र	१=)
मेरे गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस	।)
प्राचीन पंडित और कवि	॥=)
बनिता विलास	।-)

उपन्यास और गल्पें

पुस्तक	मूल्य
टाम काका की कुटिया	२॥)
राजनैतिक षड़यन्त्र (उप०)	२॥)
महाराज नन्दकुमार को फांसी	२॥)
बलिदान (ग० शं० विद्यार्थी)	२॥)
घर और बाहर (रवीन्द्रनाथ)	१)
गोरा (,, ,,)	३)
पैशाचिक काण्ड	१॥)
सीताराम (वंकिमचन्द्र)	१।)
भारती (सचित्र)	२॥।)
बनदेवी (,,)	॥।)
कर्मपथ	२)
गल्पांजलि (नेहरू)	१।)
सखाराम (सा० उ०)	१।)
सूर्यग्रहण (आपटे)	२॥)
बज्राघात (,,)	२॥)
चन्द्रगुप्त चाणक्य (,,)	२॥)
चन्द्रगुप्त—	२)
प्रेमाश्रम (प्रेमचन्द्र)—	३॥)
सेवासदन (,,)	२॥)
प्रेमपूर्णिमा (,,)	२)
सप्तसरोज (,,)	॥)
अहंकार (,,)	॥)
रागिणी (उच्चकोटिका)	४)
चरित्रहीन (शरत् चन्द्र)	३)
स्वर्ण प्रतिमा	२)
जीवन ज्योति	२)
इन्दुमती (सचित्र)	३॥)
रूस युगान्तर	२)
इन्दिरा (बंकिम बाबू)	।≡)
कलंकिनी	॥।=)
अन्नपूर्णा का मन्दिर	१)
गंगोत्तरी (वीररस)	॥।)
हेर फेर	॥।)

सूचीपत्र मुफ्त—मेनेजर प्रकाश पुस्तकालय, फीलखाना-कानपुर।

अवध के नवाब
नसीरुद्दीन हैदरशाह की सवारी

[एक प्राचीन चित्र से.

ताजा उपहार! जुलाई १९२४ का उपहार नया उपहार !!

प्रभा के नये पुराने सभी ग्राहकों को

दूसरा विराट उपहार ।

इस वर्ष हमने प्रतिज्ञा की थी 'प्रभा' के नये पुराने सभी ग्राहकों को जनवरी की तरह जुलाई में भी दूसरा उपहार देंगे, इसी प्रतिज्ञा के अनुसार अब हम—

साहित्य सम्राट डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का लगभग [८२५] सवा आठ सौ पृष्ठ का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास—

पृष्ठ ८२५ सजिल्द

॥ गोरा ॥

मूल्य ३) तीन रुपया

'प्रभा' के उपहार के रूप में १५ जुलाई १९२४ से बटना शुरू होगा और सिर्फ उन्हीं को मिलेगा, जो इस मास जुलाई के अन्त तक सर्वश्रेष्ठ राजनैतिक सचित्र पत्रिका 'प्रभा' के ग्राहक होंगे।

उपहार के नियम

"गोरा" क्या है?

गोरा संसार के सर्वमान्य साहित्य-सम्राट् रवीन्द्र बाबू का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। रवीन्द्र बाबू के इस वृहत्काय उपन्यास का अनवाद सभी श्रेष्ठ भाषाओं में हो चुका है। गोरा के अनुवादक हैं

पं० रूपनारायण पांडेय [सम्पादक माधुरी]

हमने निश्चय किया है कि ऐसे उच्चकोटि के उपन्यास को हम प्रभा के ग्राहकों को बहुत कुछ घाटा खाकर दें। हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि हिन्दी के पाठकों ने इस उच्चकोटि का उपन्यास शायद ही पढ़ा होगा। 'गोरा' सजिल्द है और प्रभा के ग्राहकों को छोड़ कर औरों से उसकी कीमत ३) तीन रु० है।

(दूसरी ओर पढ़िए)

२--उपहार पाने के नियम।

१—यह ८२० आठ सौ बीस पृष्ठ का वृहत् ग्रन्थ १।) रु० में उन्हीं को उपहार में मिलेगा जो नये ग्राहक १५ अगस्त १९२४ के आखीर तक प्रभा का वार्षिक मूल्य ५) रु० तथा १।) रु० उपहार के ग्रन्थ के लिए तथा ।-) पुस्तक के रजिस्ट्री और डाक खर्च के लिए इस प्रकार कुल ६॥-) छः रु० नौ आना मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे या हमारी भेजी हुई ६॥-) छै रु० नौ आने की वी० पी० तुरन्त छुड़ा लेंगे। वी० पी० या मनीआर्डर का रु० हमारे पास आते ही हम पुस्तक रजिस्ट्री द्वारा, घर बैठे डाक द्वारा पहुंचा देंगे।

२—'प्रभा' के नये पुराने सभी ग्राहकों को १।) सवा रु० में यह उपहार ग्रन्थ मिलेगा।

३—'प्रभा' के उन पुराने ग्राहकों की सेवा में जिनका मूल्य जून १९२४ के अंक के साथ समाप्त हो चुका है हम जुलाई का अंक में उपहार के ग्रन्थ 'गोरा' के सहित ६॥-) छं रु० नौ आने की वी० पी० से भेजेंगे। हमें अपने पुराने ग्राहकों से पूर्ण आशा है कि वे प्रभा और उपहार के वी० पी० को तुरन्त छुड़ा लेंगे। इसी आशा पर हम प्रभा के ग्राहकों की सेवा में बिना उनसे पूछे वी० पी० भेज रहे हैं।

४--प्रभा के जिन ग्राहकों का मूल्य हमारे यहाँ जमा है और जो सिर्फ उपहार के ग्रन्थ को लेना चाहते हैं वे तुरन्त १॥-) डाक से भेजदें। १॥-) मिलते ही उनकी सेवा में तुरन्त रजिस्ट्री कराकर 'गोरा' भेज दिया जायगा।

५—पुराने ग्राहक महोदय अपना ग्राहक नं० अवश्य हर हालत में लिखें नहीं तो उपहार भेजने में विलम्ब होना संभव है।

प्रभा के ग्राहकों को एक अपूर्व और लाभ-दायक सुभीता।

हमारा ख्याल है कि आगे से 'प्रभा' के ग्राहकों को अधिक से अधिक जो सहूलियत दी जा सके अवश्य दी जाय। इसी के अनुसार हमने विचार किया है कि आगे से 'प्रभा' के जो ग्राहक महोदय हमारे 'प्रकाश पुस्तकालय, फीलखाना, कानपुर' से जिस किसी भी प्रकाशक की पुस्तके खरीदेंगे उन पर हम उन्हें =) दो आना फी रुपये की रिआयत कर दिया करेंगे, मगर इसके लिए यह जरूरी है कि हरबार कम से कम ५) रु० की पुस्तकों का आर्डर और आर्डर के साथ 'प्रभा का ग्राहक नं०......, यह शब्द लिखे कर और अपना नम्बर अवश्य लिखें। क्योंकि आर्डर आने पर यदि हमारे रजिस्टर से ग्राहक नम्बर मिलेगा तभी यह =) दो आने फी रु० की रिआयत हो सकेगी अन्यथा पूरे मूल्य से पुस्तकें भेजी जायंगी। पुस्तकालय का सूची पत्र मुफ्त मंगाकर आगे से लाभ उठाइए।

निवेदक
शिवनारायण मिश्र वैद्य.
व्यवस्थापक 'प्रभा' और
प्रकाश पुस्तकालय, फीलखाना, कानपुर.

रवीन्द्र-गीताञ्जलि।

लेखक—श्री मदनमोहन मिहिर।

[जगत्-पारावारेर तीरे छेलेरा करे मेला

—बँगला गान।]

जगती-पारावार किनारे
बालक करते मेला।
विस्तृत अन्त-हीन अम्बर-तल
छाया अहो, भाल पर निश्चल,
झाग-भरा हां, वह सुनील जल
नचता सारी वेला।
तट पर यह कैसा कोलाहल!—
बालक करते मेला।

वालू से घर रचते; करते—
शून्य सीप से खेला* ।

निर्मल, विपुल, नील जल-तल पर
सस्मित, समुद बहाते रचकर—
शाखा—च्युत सूखे पत्तों से
अपनी कौतुक नौका ।

जगती-पारावार किनारे
बालक करते खेला !

अहो, उन्हें आता न पैरना,
ज्ञात न जाल डालना ।

पनडुब्बे मुक्तार्थ डूबते;
वणिक् तरणि पर यात्रा करते;
बालक चुन-चुन संग्रह करते,
केवल ढोंका, ढेला ।

रत्न-राशि का ज्ञान न उनको,
ज्ञात न जाल डालना !

सिन्धु हास्य से उमड़ा पड़ता,
हँसती सागर—वेला × ।

भीषण ऊर्मि-नाद शिशु-श्रुति में,
रचता गान तरल कल ध्वनि में,
धरे पालना, लोरी गा गा,
ज्यों माँ देती ठेला ।

सिन्धु खेलता है शिशु के सँग,
हँसती सागर-वेला !

जगती-पारावार किनारे,
बालक करते मेला ।

झंझानिल फिरती नभ-तल में,
तरी डूबती अतल सलिल में,
मँडराती आ रही मृत्यु वह;
बालक करते खेला ।

जगती-पारावार किनारे,
शिशुओं का है मेला !

---

* बाल लीला (क्रीडा खेला च कूर्दनम् इत्यमरः)

× ज्वार भाटा.

प्राचीन नगर-राष्ट्रों के राजनैतिक परिवर्तन।

लेखक—श्रीयुक्त गोवर्द्धनलाल एम० ए०, बी० एल०

त लेख में हमने ग्रीक समाज में भेदभाव के पैदा होने के कारणों पर विचार करने का वादा किया था। हम पूर्व के किसी लेख में कह चुके हैं कि प्राचीन समाज में—और प्राचीन ग्रीक समाज में भी—सभी मनुष्य प्रायः समान होते थे। मनुष्य की आद्य सामाजिक अवस्था में प्रायः सभी मनुष्यों के अधिकार समान होते थे। तब इस समानता का विनाश किस प्रकार हुआ, समाज में जाति प्रथा का—बड़ाई, छोटाई, ऊँच नीच का—जन्म किस प्रकार हुआ हमें इसी प्रश्न पर विचार करना है।

नगर-राष्ट्रों की स्थापना के कारणों को वर्णन करते हुए हमने पूर्व के किसी लेख में कहा था कि मुख्यतः आत्म-रक्षा के हेतु और धार्मिक कारणों के द्वारा छोटे छोटे समाजों ने मिल कर नगर-राष्ट्रों की स्थापना की थी। उसी स्थान पर हमने यह भी कहा था कि कहीं कहीं कुछ छोटे छोटे समाज बलात्कार भी एक बड़े समाज में मिला लिये गये थे अर्थात् कहीं कहीं विजय के द्वारा भी राष्ट्रों की स्थापना हुई थी। पूर्व प्रकार के राष्ट्रों का नमूना एथेन्स और दूसरे प्रकार के राष्ट्रों का नमूना स्पार्टा है। यहाँ पर हम पाठकों का ध्यान इन दूसरे प्रकार के राष्ट्रों की ओर आकृष्ट करना और यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि भेदभाव के पैदा होने का मुख्य कारण युद्ध है।

विजयद्वारा स्थापित राष्ट्रों में विजित लोग विजेताओं के गुलाम या आराम के यन्त्र बन गये और वह सर्वतः अधिकार-शून्य रहे। वह किसी प्रकार राष्ट्र के नागरिक नहीं बन सके क्योंकि सङ्कीर्ण और धर्म-प्राण राष्ट्र में वह किसी प्रकार राष्ट्र के धर्म और कार्यतः उसकी राजनीति में भाग नहीं ले सकते थे। इस प्रकार राष्ट्र में वास्तविक अधिकार और बल से युक्त मनुष्य की संख्या कम हो गई और राष्ट्र अल्प सत्तात्मक राष्ट्र में परिणत हो गये तथा समाज में भेद-भाव की स्थापना हो गई। सिर्फ स्पार्टा में ही नहीं अन्य स्थानों में भी यही बातें दृष्टिगोचर होती हैं। आर्गस में विजेता डोरियनों ने विजित एकियनों के साथ वही व्यवहार किया जैसा कि उनके साथ स्पार्टा में किया गया था। अन्तर केवल नाम का ही था। स्पार्टा में विजित लोग हेलौट्स कहलाते थे आर्गस में जिम्नेटीज़। स्पार्टा ही के सदृश यहाँ भी आश्रित शहरों और ग्राम पुञ्जों—जहाँ के रहनेवाले स्पार्टा में पीरिऔकाई कहलाते थे—की सृष्टि हुई, जिसके निवासी स्वतन्त्र तो अवश्य थे परन्तु सभी राजनैतिक अधिकारों से शून्य अर्थात राजनैतिकतः परतन्त्र। क्रीट में भी ऐसा ही हुआ था। पूर्वोक्त स्थानों के सदृश यहाँ भी विजेतागण, गुलाम और विजित जन समुदाय—लोगों के यही तीन भेद दीख पड़ते हैं। विजय द्वारा स्थापित राष्ट्रों की समग्र यही दशा है।

समाज में इस तरह के भेदों के उत्पन्न होने के अन्य कारणों की भी हम कल्पना कर सकते हैं। किसी नगर के उन्नत और समृद्धिसम्पन्न होने पर हम अनुमान कर सकते हैं कि उसके धन और समृद्धि के द्वारा तथा व्यापार वाणिज्य के ख़याल से आकर्षित होकर अन्य नगरों से आकर भी लोग वहाँ बस जायँगे। परन्तु हम देख चुके हैं कि प्राचीन नगर राष्ट्रों में यह लोग नागरिकता या कोई राजनैतिक स्वत्व नहीं प्राप्त कर सकते थे। इस प्रकार भी बाहिरी लोगों की संख्या बढ़ जाने पर कुछ राष्ट्रों में भेदभाव की स्थापना हुई होगी।

पुनः यह भी निश्चित ही है कि नगरराष्ट्रों के क़ायम हो जाने पर भी सभी लोग रहने के लिए नगरों में नहीं चले गये होंगे, वरन कुछ लोग

नागरिक होने पर भी पूर्ववत् दिहातों में ही रहते होंगे। नगर राष्ट्रीयजीवन का हृदय होने के कारण स्वभावत: नगरनिवासी राष्ट्रीय काम में अधिक भाग लेते होंगे और दिहाती,—कुछ तो अपनी अनभिज्ञता, कुछ बराबर नगर में उपस्थित होकर राजनैतिक कामों में भाग न ले सकने के कारण, —पिछड़ गए होंगे। हम सहज में समझ सकते हैं कि भेदभाव के एक बार पैदा होते ही यह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया होगा और भिन्न भिन्न श्रेणियों के बीच की खाई और भी गहरी होती गई होगी।

भेदभाव के उत्पन्न होने के कुछ अन्य कारणों का भी हमें पता चलता है। समाज शासन से कहीं प्राचीन है तथा कुछ अन्य जीवधारियों के सदृश मनुष्य भी सामाजिक जीव [Political Animal] है। ग्रीस में नगरराष्ट्रों के निर्माण के पूर्व लोग देहातों में रहते थे। ग्राम निवासियों के यूथ Village communities या ग्रामसमाजों के नाम से मशहूर हैं इन ग्राम समाजों की स्थापना के समय मनुष्य का भूखण्ड विशेष के साथ स्थायी और अविच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। भूमि पर पहले साधारण अधिकार रहता है और वह एकबएक सम्पत्ति की अवस्था में परिणत नहीं होती। धीरे धीरे भूमि पर वैयक्तिक अधिकार होने लगता है और वह व्यक्तिगत सम्पत्ति बन जाती है। परन्तु इतना निस्सन्देह है कि प्रथम प्रथम राजनैतिक अधिकार भूमि के साथ आबद्ध होते हैं। भूमि-हीन मनुष्यों को कोई राजनैतिक अधिकार नहीं मिल सकते। परन्तु जन संख्या के बढ़ते ही कुछ लोगों का भूमिहीन होना भी स्वाभाविक ही है। पिता का भू-भाग उसकी सन्तानों में लगातार बँटते बँटते कुछ दिनों में अवश्य नहीं के बराबर हो जायगा और कुछ लोग भूमिहीन और इसलिए राजनैतिक अधिकारों से भी हीन हो जायँगे। पुनः जमीन की खरीद बिकरी से भी सामाजिक समानता पर आघात पहुंचता है। भूमिहीन स्वतन्त्र पुरुषगण अपने खर्च से युद्ध करने में असमर्थ रहते हैं और इसलिए जातीय महासभा में अपने कुल अधिकारों को खो बैठते हैं। प्राचीन ग्रीस की तरह सैनिक समाजों में युद्धक्षमता के नष्ट हो जाने पर अधिकारों का खो बैठना भी पूर्णतः स्वाभाविक है। इन कारणों से बड़े बड़े भूस्वामियों के अधिकारों का बढ़ना पूर्णतः स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। एक बात और है। प्राचीन युद्धों में अश्वसेना को अत्यधिक महत्व प्राप्त था। परन्तु सभी लोग घोड़ा खरीदने और पालने में समर्थ नहीं हो सकते इसलिए प्राचीन ग्रीस में अश्वारोहियों अर्थात अमीरों को विशेष प्राधान्य प्राप्त होता था। अश्व-सेना के महत्व के घटने पर ही ग्रीस में प्रजातंत्र-शासन का जन्म हो सका था।

इस विषय के अब और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। यह निश्चित है कि ग्रीस के प्रधान राष्ट्रों में ईसा से पूर्व आठवीं शताब्दी में राजा का बहिष्कार और उसके स्थान पर अल्पसत्तात्मक शासन (Oligarchy) का जन्म हो गया था।

अल्प सत्तात्मक शासन के पश्चात ग्रीस में राष्ट्र की बागडोर कुछ उद्दण्ड तथा पूर्णतः स्वतन्त्र मनुष्यों (Tyrants) के हाथों में आ गई, यह हम पहले ही कह चुके हैं। इनका शासन किसी विधान या परम्परागत रीति के द्वारा नहीं होता था, यह भी हम पहले ही कह चुके हैं। इस प्रकार के शासन का उदय ग्रीस में दो बार हुआ है। पहले तो ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी में और दुबारा ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी में। राजनैतिक अस्तव्यस्तता तथा प्रचलित असन्तोष से तो निस्सन्देह दोनों तरह के तानाशाहों (Tyrants) ने—किसी उपयुक्त शब्द के न मिलने के कारण हम इन शासकों को "तानाशाह" कह कर पुकारते हैं। लाभ उठाया था; परन्तु इन दो समयों में उत्पन्न होनेवाले शासनों में यह भेद है कि पूर्वकालीन शासन प्रजा की सहायता से हुआ था परन्तु उत्तर-

कालीन तानाशाही शासन की स्थापना वैतनिक सिपाहियों की सहायता से हुई थी। *

खास ग्रीस में इस प्रकार के शासन का जन्म सातवीं शताब्दी में (ईसा से पूर्व) और इसका अन्त छठी शताब्दी में हुआ। ग्रीस से शीघ्र ही इसका लोप हो गया। अरस्तू के अनुसार साईकियन में इस प्रकार का शासन सब से अधिक काल तक रहा। आर साईकियन में इस तरह का शासन केवल सौ वर्षों तक जारी रह सका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी राष्ट्रों में इस तरह के शासन का जन्म और अन्त एक ही समय नहीं हुआ। अतएव हमने अभी ऊपर इस तरह के शासन के स्थापित और उन्मूलित होने का जो काल निश्चय किया है उसे प्रत्येक राष्ट्र के लिए एकदम से ठीक न मान लेना चाहिए। सिसली और दक्खिन इटली के नये उपनिवेशों में इस शासन का जन्म सातवीं शताब्दी के अन्त तक नहीं हुआ और पांचवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में सिसली में यह शासन अपनी चरम सीमा और बल पर पहुंचा हुआ था। तौ भी अधिकांश स्थानों में यह परिवर्त्तन ऊपर बताये हुए काल में ही हुआ। ×

प्राचीन अल्पसत्तात्मक शासन के विरुद्ध जो आन्दोलन हुआ उसके प्रोफेसर सिजविक ने निम्न लिखित कारण बतलाये हैं। (१) छोटे छोटे कृषकों पर धनवानों का अत्याचार और उनके अधिकारों की अवहेलना। उदाहरणार्थ अरिस्टाटल कहते हैं कि मिगारा में टाइरैण्ट (Tyrant थियागिनीज़ ने धनवानों के पशुओं को साधरण भूमि पर पड़े रहने के कारण मार डाला था। पुनः धनवानों से ग़रीबों के ऋण लेने के कारण तथा ग्रीस के ऋण सम्बन्धी क़ानून के प्राचीन रोम के तत्सम्बन्धी क़ानून के ही समान निष्ठुर और कठोर होने के कारण भी धनवानों को अत्याचार करने का अच्छा अवसर प्राप्त होता था। (२) व्यवसाय वाणिज्य के बढ़ने से प्राचीन कुलों और वंशों छोड़ कर अन्य लोग भी धनवान होने लगे और धन और महत्व के प्राप्त कर लेने पर उन लोगों ने स्वभावतः इस आन्दोलन में भाग लिया और इसे प्रज्वलित किया। क्योंकि वर्तमान शासन के अन्दर नए धनिक कोई भी अधिकार प्राप्त न कर सकते थे (३) तिजारत के द्वारा अन्य देशों से परिचय और इस प्रकार लोगों के विचारों का किञ्चित उन्नत एवं पुराने विचारों

---

* ऊपर लेखक महाशय ने जो कुछ लिखा है उससे यह प्रतीत होता है कि ग्रीस में Oligarchy (अल्पसत्तात्मक शासन) के उपरान्त Tyranny (तानाशाही शासन) का जन्म हुआ। हम नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि यह धारणा भ्रमपूर्ण है ग्रीस के इतिहास के कुछ प्राचीन लेखकों की यह धारणा हो गई थी कि तानाशाही (Age of the Tyrants) अल्पसत्ताक शासन काल (Oligarchy) और जनसत्ताक शासन काल के बीच अवश्यमेव प्रक्षिप्त है। वर्त्तमान काल के इतिहासज्ञों ने गम्भीर अध्ययन तथा बारीक खोज के उपरान्त इस सिद्धान्त को असत्य ठहराया है। उदाहरण लीजिये। कोरिन्थ नामक जनपद में तानाशाही शासन के बाद जनसत्ताक शासन का कदम—जैसा कि उक्त सिद्धान्त की रू से होना आवश्यक है—नहीं हुआ। कोरिन्थ में Tyranny के बाद Oligarchy आई। और यह अल्प सत्ताक शासन ताना शाही शासन के बाद कोरिन्थ में २५० वर्षों तक रहा। इसी प्रकार एथेन्स का शासन-इतिहास उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रतिवाद स्वरूप है। नियमतः एथेन्स में Tyranny (तानाशाही शासन) के शुरू होने के पहले Oligarchy (अल्प सत्तात्मक शासन) होना चाहिये था। पर बात ऐसी नहीं है। एथेन्स में Timocrcy (धन शासन के बाद Tyranny (तानाशाही शासन) का प्रारम्भ होता है। ग्रीस के इतिहास में ये दो अपवाद ऐसे हैं जो लेखक महाशय के सिद्धान्त को सन्देहमूलक ठहराते हैं।

—प्रभा-सम्पादक

× इस स्थान पर भी लेखक को भ्रम हो गया है। यह कहना ठीक नहीं कि ग्रीस में तानाशाही शासन काल सातवीं शताब्दी से लगाकर छठी शताब्दी तक ही है। पांचवीं शताब्दी के अन्तिम ६० वर्षों को छोड़ कर प्राचीन ग्रीक इतिहास में ऐसा कोई भी समय नहीं मिलता जब कि खास ग्रीस के एक न एक प्रदेश में तानाशाही शासन (Tyranny) विद्यमान न रहा हो)

—प्रभा-सम्पादक

का शिथिल होना अर्थात किंचित बुद्धि-स्वातन्त्र्य का जन्म। प्राचीन विचारों और खयालों के ढीला पड़ जाने के कारण अमीर लोगों ने प्राचीन सीधे सादे रहन सहन को परित्याग कर दिया और वह विषय और विलासिता में डूब गये। इस कारण भी लोगों में उनके प्रति अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न हो गई (४) किसी लिखे हुए आईन या विधान का वर्तमान न रहना। इस कारण भी अमीरों को जो कि न्याय कार्य का संचालन भी करते थे—अत्याचार और मनमाना करने का अच्छा अवसर प्राप्त होता था।

इन ही सब कारणों ने प्राचीन ग्रीस के वायुमण्डल को राजनैतिक क्रान्ति के उपयुक्त बनाया। शायद प्रत्येक राष्ट्र ने परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया था और शायद क्रांति को सिर पर नाचती हुई देख कर ही ग्रीक राष्ट्रों ने इस समय आवश्यक सुधारों के द्वारा इसके रोकने की चेष्टा की थी। शायद इसीलिए हम सातवीं शताब्दी (ईसा से पूर्व) में हम बहुत से नियम बनाने वालों-या स्मृतिकारों और व्यवस्थापकों को जन्म लेते हुए पाते हैं। हम देखते हैं कि उपनिवेशों में हमें ज़लीनीउस और चिरोण्डा और मुख्य ग्रीस में ड्रेको और सोलन कानून बनाते हुए—या शायद प्राचीन अलिखित क़ानूनों को कुछ अंशों में संशोधित करके एवं व्यवस्थित रूप से और उचित क्रम में लिपिबद्ध करते हुए नज़र आते हैं इनमें से कुछ व्यवस्थापकों को पूर्ण शक्ति प्राप्त थी। यह एसेम्नेटी (Aesgmnete) कहलाते थे। एसेम्नेटी का चुनाव तो नियमानुसार होता था पर उसे अनियन्त्रित शक्ति प्राप्त होती थी। वह अपने कार्यों के लिए किसी के प्रति उत्तरदाता नहीं था। यह लोग अक्सर कुछ नियत समय के लिये या किसी विशेष कार्य के सम्पादन के लिए इस पद पर बैठाये जाते थे। एथेन्स में विख्यात सोलन को एक वर्ष के लिए यह शक्ति दी गई थी और अरिस्टाटल कहते हैं कि मिटिलिनी में पेटिकस दस वर्षों के लिए "एसिम्नाइटी" बनाया गया था।

परन्तु यह सभी पूर्वोपाय निष्फल गये। क्रांति का रुकना कठिन हो गया। और प्रायः प्रत्येक सभ्य उन्नत नगर में उपरोक्त अवैध शाही शासन प्रणाली का आविर्भाव हुआ। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि उन्नतिशील और समृद्ध नगरों ही में यह क्रान्ति उपस्थित हुई; बिछड़े हुए व्यापार वाणिज्य से शून्य अनुन्नत राष्ट्रों में नहीं। इसीलिए हमें थेसेली, बिओशिया, थीबस, स्पार्टा, लकोनिया, आर्गस, एलिस एकिया के छोटे छोटे समाजों, और पहाड़ी आरकेडिया प्रभृति प्रदेशों में इस क्रांति का कोई चिन्ह नहीं दीख पड़ता। प्रत्युत समुद्र-तीरस्थ और व्यापार-परायण सभी राष्ट्रों में हम इन बादशाहों को आविर्भूत होते हुए पाते हैं। ऐटिका, यूबिया, साइकियन, मिगारा, कौरिन्थ, चैलसिस एवं अन्य उपनिवेशों में भी हमें यह क्रांति होती हुई नजर आती है।

ग्रीक दार्शनिक और विद्वान इन अवैध बादशाहों को सदैव घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनको इन बादशाहों के साथ तनिक भी सहानुभूति नहीं है। परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि ये बादशाह अत्याचारी होते थे। साधारण प्रजावर्ग का इन से असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं था। इनके राज्य से अधिक कष्ट धनिकों ही को होता था। यहां पर हेरोडेटस द्वारा वर्णित एक कथा का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। कौरिन्थ के पेरिऐण्डर ने माईलेटस के थ्रैसावुलस के पास शासन सम्बन्धी कुछ उपदेश के लिए एक दूत भेजा। थ्रैसाबुलस इस दूत को टहलने के लिए हरे खेतों में ले गया और उसने सफर के सम्बन्ध में उस दूत से बहुत कुछ पूछताछ की। बात करते करते उसने खेत के बड़े बड़े और अन्न से लदे हुये पौदों के बाल काट लिये। सिवाय इसके उसने दूत को और कुछ उपदेश न दिया। संकेत स्पष्ट ही है। अर्थात राष्ट्र के बड़े बड़े आदमियों को सदा बलहीन रखना चाहिए।

उत्तरदायित्वशून्य और उच्छृङ्खल होने पर भी इन बादशाहों ने बहुत से राष्ट्रों में राष्ट्र की गौरव

वृद्धि की। कला और शिल्प का प्रचार किया। अनेक उत्तम इमारतें बनवाईं। एथेन्स में जिउस का सुन्दर मन्दिर पिसास्ट्रेटस और उसके वंशजों का ही बनवाया हुआ है।

परन्तु नियम विरुद्ध और अवैध होने के कारण सर्वत्र यह शासन अवज्ञा की दृष्टि से देखा जाता था और इसी लिये यह अति शीघ्र अन्तर्द्धान भी हो गया।

ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी में जन्म ग्रहण करने वाले द्वितीय प्रकार के शासन के सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

(२) मैसिडन का एकाधिपत्य और मैसिडोनियन साम्राज्य का उत्थान जगत प्रसिद्ध घटना है। फ़िलिप और सिकन्दर के साम्राज्य-वाद ने ग्रीक राजनीति—नगर राष्ट्र की राजनीति—का एक प्रकार से अन्त ही कर डाला। इसके द्वारा गोया राजनीति की शकल ही बदल गई।

प्रायः डेढ़ शताब्दी तक—फ़ारस की लड़ाई से मैसिडन के उत्थान तक अर्थात ईसवी सन से पूर्व लगभग ४८० से ३३६ वर्ष तक—ग्रीस केवल अपनी व्यावहारिक राजनीति में ही नहीं बल्कि अपने विश्वासों, धारणाओं, आकाङ्क्षाओं, और कामनाओं में भी, प्रजातन्त्रात्मक रहा।

शाही शासन के समाप्त होने के पश्चात् ग्रीक राजनीति में प्रजातन्त्रात्मक शासन का युग आ उपस्थित होता है और साधारणतः हम ग्रीक राष्ट्रों को प्रजातंत्रात्मक शासन के अधीन पाते हैं। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि तानाशाही शासन ग्रीक मत और ग्रीक रुचि के प्रतिकूल था। तानाशाह का शासन अच्छा हो या बुरा, वह सर्वत्र घृणा और अवज्ञा की दृष्टि से देखा जाता था। ग्रीक लोगों के हृदय में उसके प्रति कुछ भी सम्मान या सहानुभूति नहीं थी। उसका बध करना भी पवित्र काम माना जाता था। इसलिए भावी राजनैतिक उथल पुथल में हम उसे कोई महत्व पूर्ण भाग लेते हुए—या पुनः राजनैतिक एकाधिपत्य लाभ करते हुए नहीं पाते। इस युग का राजनैतिक द्वंद शाही और अल्प सत्तात्मक शासन के मध्य नहीं है बरन प्रजातंत्रात्मक और अल्पसत्तात्मक शासन के मध्य। शाही शासन के पश्चात् कहीं कहीं आवश्यक सुधारों के द्वारा तथा प्रजावर्ग की सभा को कुछ विषयों में अधिकारों को देकर अल्प सत्तात्मक दल ने अपनी सत्ता को अटल बनाना चाहा। कहीं कहीं क्रांतियाँ भी हुईं और प्रजातंत्र पुनः अल्पसत्तात्मक शासन में परिणत हुए। परन्तु यह नूतन अल्पसत्तात्मक शासन भी क्षणिक ही थे। यह अधिक दिन तक जीवित न रह सके और शीघ्र ही प्रजातंत्र द्वारा कवलित हुए। उस समय ग्रीक राजनीति की समग्र प्रगति प्रजातन्त्र की ही ओर थी। प्रजातंत्रात्मक शासन की धारा क्षुद्र और मन्द गति से नहीं बरन अत्यन्त तीव्रता के साथ दौड़ रही थी। और यदि कुछ बाह्य घटनाएं इस धारा में पड़ कर इसके वेग को कम न कर देतीं तो शायद प्रायः समस्त ग्रीस प्रजातन्त्रात्मक हो जाता। इन बाह्य घटनाओं में से मुख्यतः एक अर्थात स्पार्टा का बल और प्राधान्य एवं उसकी व्यावहारिक नीति का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। स्पार्टा ने ग्रीक इतिहास में सदा प्रजातन्त्रात्मक शासन के विरुद्ध अल्प सत्तात्मक शासन का पक्ष लिया है। उसने सदैव अल्प सत्तात्मक दल की रक्षा की है और उसे सहायता दी है। इतना ही नहीं उसने कई स्थानों पर प्रजातन्त्रात्मक शासन का उन्मूलन कर अल्प-सत्तात्मक शासन की स्थापना भी की है। स्पार्टा सदा प्रजातन्त्र का शत्रु रहा है और प्रजातन्त्रात्मक वेग को कम किया है, इसे इतिहास के सभी विद्यार्थी जानते हैं। स्पार्टा के राजनैतिक इतिहास और शासन-विद्या हम स्वतन्त्र रूप से आगामी किसी लेख में कुछ लिखने का प्रयत्न करेंगे।

अब हम संक्षेप में ग्रीक राजनीति के इतिहास का वर्णन कर चुके। हम देख चुके कि कुलपति-शासित समाज के मूल से ग्रीस में किस प्रकार प्रजातन्त्र की स्थापना हुई तथा समस्त ग्रीक वायुमण्डल किस प्रकार समानता के गुञ्जार से

गुञ्जायमान हो गया—लोग अपनी स्वतन्त्रता का अत्यन्त बहुमूल्य समझने लगे। अब वस्तुतः व्यावहारिक क्षेत्र में प्रजातन्त्रात्मक शासन ने अपना कार्य किस प्रकार साधित किया इस पर विचार करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। ग्रीक प्रजातन्त्र कहाँ तक सफल कहाँ तक असफल हुए—शासन के वास्तविक उद्देश के प्राप्त करने में यह प्रजातन्त्र कहाँ तक समर्थ हुए—हमें इस पर भी कुछ विचार करना चाहिए। परन्तु इस काम के लिए हमारे पास काफ़ी सामग्री नहीं है। इस लिए हमें प्रजातंत्रों के ऊपर ग्राक दार्शनिकों और राजनीतिज्ञों के मतों पर ध्यान देना तथा उनके कथन की सत्यता और असत्यता पर विचार करना अनिवार्य्य प्रतीत होता है। सुक़रात ने सभी प्रकार के शासनों को दो भागों में विभक्त किया है। अच्छा शासन वही है कि जिसमें शासक वर्ग अपने हित के लिए नहीं वरन प्रजा के हित के लिए शासन करते हों। अरस्तू ने सुकरात के इस वर्गी-करण को क़ायम रखते हुए शासकों की संख्या के आधार पर शासन-प्रथाओं को छः श्रेणियों में विभक्त किया है। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है:—

उत्तम स्वरूप	निकृष्ट रूप
नियमाधीन एक राजायत्त शासन (Monarchy)	अबोध तानाशाही शासन (Tyranny)
गुणवान सत्तात्मक शासन (Aristocracy)	अल्प सत्तात्मक (obigarchy)
प्रजातन्त्रात्मक शासन (Democracy)	समूह सत्तात्मक (cchlocracy mobocracy)

प्लेटो (Plato) ने भी राष्ट्रों के वर्गीकरण के ऊपर अधिक ध्यान दिया है। स्टेटसमैन (statesmen) नामक प्रश्नोत्तर में प्लेटो ने राष्ट्रों का जो वर्गीकरण किया है अरस्तू के वर्गीकरण का आधार भी वही है। परन्तु अरस्तू की वैज्ञानिक दृष्टि अति तीक्ष्ण है और प्लेटो की निष्कर्ष वैज्ञानिक दृष्टि से कहीं महत्व पूर्ण। पुनः प्लेटो की अपेक्षा राजनीति के अध्ययन के लिए अरस्तू के पास सामग्री भी कहीं अधिक है और इन प्रमाणों और उदाहरणों पर विचार करने में अरस्तू अपने वैज्ञानिक लक्ष्य को कभी नहीं भूला है। इसमें वैज्ञानिकों की सी निस्पृहता पाई जाती है अरस्तू गुणवान लोगों के अल्पसत्तात्मक शासन को सर्वोत्तम अनुमान करता है। इस विषय में प्लेटो के साथ उसका कोई मत भेद नहीं हैं। प्लेटो कहता है कि "यह असम्भव है कि राष्ट्रों का अशिक्षित समूह राजनीति का आवश्यक ज्ञान रख सके। १००० मनुष्यों के नगर में तुमको कठिनता से पचास अच्छे ताश खेलने वाले मिलेंगे तो क्या किसी नगर में इन से अधिक राजनीतिज्ञ पाये जा सकते हैं।" परन्तु अरस्तू स्वार्थान्ध अल्पसत्तात्मक शासन(Oligarchy) की अपेक्षा बुरे से बुरे समूह सत्तात्मक प्रजातंत्र को उत्तम समझता है।

उसके विचार में प्रजातंत्र अल्पसत्तात्मक शासन की अपेक्षा अधिक स्थायी होते हैं। पूर्णतः प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रों में अश्रद्धा रखते हुए भी अरस्तू नियमित प्रजातंत्रों को उत्तम समझता है और वह अनुमान करता है कि समुचित शिक्षा से युक्त प्रजा वैयक्तिक रूप से नहीं तो सामूहिक रूप से थोड़े से मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान हो सकती है। इसीलिए सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, व्यावहारिक दृष्टि से अपने आदर्श राष्ट्र के निर्माण करने में अरस्तू ने अपनी सम्मति प्रजातंत्र के ही पक्ष में दी है। उसकी राय है कि यथेष्ट वयस प्राप्त कर लेने पर सभी नागरिकों को राष्ट्रीय कामों में भाग लेने का अधिकार मिलना चाहिए। परन्तु स्मरणीय बात यह है कि अरस्तू के आदर्श राष्ट्र में सभी मनुष्यों को नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। अरस्तू के नागरिक ऐसे ही मनुष्य हैं जिन्हें यथेष्ट समय और शिक्षा प्राप्त है, तथा जिन्हें पेट की चिन्ता सदा नहीं सताती रहती। उसके आदर्श राष्ट्र में श्रमजीवियों, कारीगरों, मिस्त्रियों व्यापारियों, या कृषकों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उसके आदर्श नागरिक ज़मीन्दार हैं जो स्वयं कृषिकार्य नहीं करते वरन जिनके लिए गुलाम या

छूत और अछूत।

(वह दिन देश का, सौभाग्योदय का होगा जब छूत
और अछूत कंधे से कंधा लगाकर खड़े होंगे)

प्रताप प्रेस, कानपुर
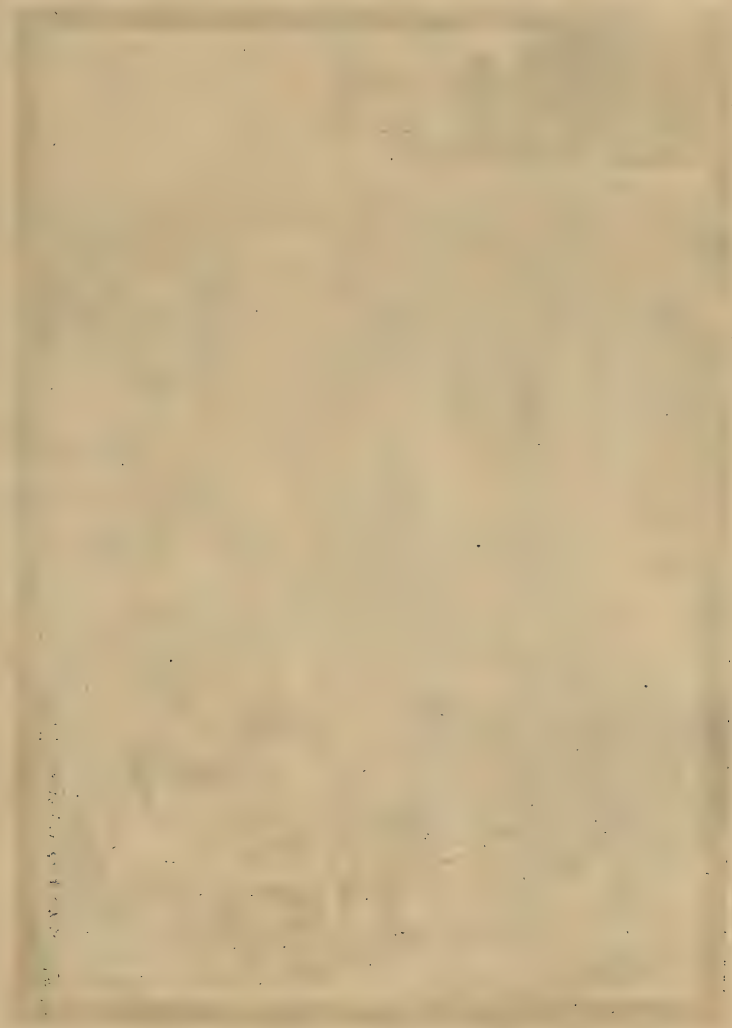
भृत्यवर्ग खेती करते रहते हैं। एक प्रकार से अरस्तू का प्रजातन्त्र (Politic) अल्पसत्तात्मक ही है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट ही है कि अरस्तू की राजनैतिक दृष्टि प्रजातंत्रात्मक नहीं है तथा अरस्तू प्रजातंत्रात्मक शासन से संतुष्ट नहीं है। अरस्तू प्रजातंत्रात्मक युग में पैदा हुआ था और उसने अनेक प्रजातंत्रों के वास्तविक शासन का अध्ययन और निरीक्षण भी किया था। अरस्तू का समय प्रजातंत्रात्मक शासन का समय है और स्वयं अरस्तू कहता है कि समग्र ग्रीक राष्ट्र बड़े वेग से अनियंत्रित—या उच्छृङ्खल—प्रजातन्त्रकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। क्या हम कह सकते हैं कि वास्तव में ग्रीस के प्रजातंत्र निकृष्ट और दोषपूर्ण थे ? क्या हम कह सकते हैं कि वास्तविक प्रजातंत्रों की त्रुटियों से असंतुष्ट होकर ही अरस्तू ने उसके सम्बन्ध में अपनी राय कायम की है ? केवल अरस्तू ही नहीं ग्रीस के अन्य विद्वानों और दार्शनिकों को भी प्रजातंत्रों के साथ सहानुभूति नहीं है। प्रजातंत्र के साथ प्लेटो की असहिष्णुता अरस्तू से कहीं अधिक स्पष्ट है । जेनोफोन भी खुल्लमखुल्ला स्पार्टा का समर्थक है। और वह उसी के शासन विधान की प्रशंसा करता है। क्या हम कह सकते हैं कि यह सभी विद्वान सुकरात के शिष्य थे और इसीलिए इनके विचारों पर सुकरात के विचारों की छाप लगी हुई है अर्थात इनके विचारों में वास्तविकता और सत्य का उतना अंश नहीं है ? परन्तु नहीं अन्य लोग भी इसी मत के नज़र आते हैं। आइसोक्रेटीज़ (Isocrates) ने भी प्रजातन्त्रों के अत्याचार, अयोग्यता, उच्छृङ्खलता और दुर्वृत्त, विवेक-हीन व्याख्यान-दाताओं के द्वारा नचाये जाने के सम्बन्ध में लिखा है। इन सार्वजनिक व्याख्याताओं के बारे में वह कहता है कि ये लोग केवल मात्र हमारे जातीय गौरव को ही कलङ्कित नहीं करते वरन यह हमारा धन लूट कर अमीर बनते हैं। वह निरन्तर निन्दा और परिवाद में लगे रहते हैं । उनका लोभ और आततायीपन जिस दर्जे पर पहुंचा हुआ है उससे उनकी अयोग्यता भी कम नहीं है। उनके अद्भुत प्रभाव के कारण हम स्वयं अपने विचारों को भी भूल जाते हैं। यद्यपि घूस की सज़ा मृत्यु है तथापि निकृष्टतम मनुष्य जन-सभाओं को घूस देकर—अर्थात उनकी स्तुति और प्रशंसा करके—उनको उत्तेजित और प्रोत्साहित कर हमारे सरदार बन जाते हैं ।" अतएव यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सभी विचारशील और विद्वान पुरुष प्रजातन्त्रात्मक शासन से असंतुष्ट थे। परन्तु सब के सब इस बात में भी अवश्य सम्मत थे कि बुरे और स्वार्थ-पूर्ण अल्प-सत्तात्मक शासन से निकृष्टतम प्रजातन्त्र भी कहीं अच्छा है। आईसोक्रेटीज़ (Isocrates) ही कहता है कि हम लोगों का अन्याय और व्यभिचारपूर्ण प्रजातन्त्र भी स्वार्थपूर्ण अल्पसत्तात्मक शासन से तुलना किये जाने पर दिव्य, सुन्दर और स्वर्गीय ही नज़र आता है। ग्रीक इतिहास के अध्ययन से भी यही पता चलता है कि ग्रीक राष्ट्रों की उन्नति अल्पसत्तात्मक शासन की अपेक्षा प्रजातन्त्रात्मक शासन के अन्दर कहीं अधिक हुई थी। निस्सन्देह अपने रिपब्लिक नामक ग्रन्थ में (Plato) प्लेटो ने यह अवश्य लिखा है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रत्येक अवस्था में हेय है परन्तु पीछे अपने स्टेटसमैन (Statesman) नामक प्रश्नोत्तर में प्लेटो ने भी अपने विचारों को बदल डाला है।

इन विद्वानों के ही ग्रन्थों और लेखों से यह पता चल जाता है कि प्राचीन प्रजातन्त्र उतने बुरे नहीं थे कि जितने बुरे वह अनुमान किये जाते हैं। और शायद वह उतने अयोग्य भी नहीं थे क्योंकि स्वयं अरस्तू कहता है कि अन्य शासन प्रणालियों की अपेक्षा प्रजातंत्रात्मक शासन अधिक स्थायी होता है।

प्रजातन्त्रात्मक शासन के द्वारा जनता की वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा होती थी यह बात हमें डिमौस्थनिज़ के ग्रन्थ से विदित होती है । डिमौस्थनिज़ कहता है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन

अन्य शासनों से कम कटु होता है। लोगों को भाषण की स्वतन्त्रता रहती है। थूसीडाइडीज़ Thucidides कहता है—"प्रजातन्त्रात्मक शासन में हर आदमी को इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता रहती है। हम लोग सभी कोई अपने अपने मार्ग पर चलते हैं। और दूसरों के आचरण पर भ्रूभंगी नहीं करते—आंखें नहीं मटकाते और उन्हें अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देखते।" प्लेटो कहता है "प्रजातन्त्रात्मक शासन के अन्दर कुत्ते भी धृष्ट और दुर्विनीत नज़र आते हैं और गदहे भी नागरिक अधिकार से युक्त तथा अच्छे गुणवान पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलते हुए देखे जाते हैं।" एथेन्स के शासन-विधान पर कटाक्ष करते हुए एक दूसरे लेखक ने लिखा है—"यदि कोई गुलाम तुम्हें आता हुआ देख कर मार्ग से न हट जाय तो एथेंस में तुम उसे भी नहीं मार सकते हो। अतएव यह स्पष्ट ही है—और यह ग्रीक राष्ट्रों के गौरव और समानता प्रेम का परिचायक है—कि प्रजातंत्रात्मक ग्रीस में गुलामों का भाग्य बहुत कुछ पलट चुका था।

परंतु प्रजातंत्रों पर एक बहुत बड़ा अभियोग यह लगाया जाता है कि वह निरंतर अमीरों के धन-शोषण के प्रयत्न में लगे रहते थे। प्रमाणों के विरुद्ध हमें इसके अस्वीकार करने का साहस नहीं हो सकता। परंतु क बात अवश्य कही जा सकती है और वह यह कि शायद यह लूट बहुत दूर तक नहीं पहुंची थी। यदि ऐसा होता तो हमें प्रत्येक प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्र से अमीर लोग पलायन करते हुए नज़र आते और राष्ट्र का व्यापार वाणिज्य नष्ट होता हुआ दिखाई पड़ता।

प्रजा के न्याय काय की भी कुछ लेखकों ने तीव्र आलोचना की है एवं यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि प्रजा का न्याय पक्षपात से भरा होता था। आरिस्टौफेनीज़ कहता है कि अभियोगी नित्य अमीर सार-मज्जा-युक्त, मोटे अपराधियों की तलाश में भ्रमण करते हुए नज़र आते हैं। लीसियस कहता है कि मुक़दमे की जांच के समय अक्सर वकील यह भी बहस करते हैं कि यदि वह अभियुक्त को अदण्डित छोड़ देंगे तो राष्ट्रीय कोष खाली हो जायगा और उन्हें तीन मुद्रा प्रति दिन नहीं मिल सकेंगी। ग्रीक प्रजातंत्रों पर एक और भी यह अभियोग लगाया जाता है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के अंदर अमीरों को बहुत टैक्स देना पड़ता था और वह कर भार से लदे थे। यद्यपि यह अभियोग किसी अंश में सत्य हो सकता है, तथापि यह आधुनिक नीति से अधिक भिन्न नहीं है। आधुनिक नीति के अनुसार आमोद प्रमोद और विलासिता की चीज़ों पर ग़रीबों द्वारा व्यवहार की जाने वाली वस्तु से अधिक कर बैठाया जाता है। प्रायः प्रत्येक सभ्य देश में आय की कमी अकसर इन्कम टैक्स को ज्यादा करके पूरी की जाती है। और न्याय भी यही है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार राष्ट्रीय खर्च का भार वहन करना चाहिए।

ग्रीक प्रजातन्त्रों पर यह भी अभियोग लगाया जाता है कि वह हमेशा लड़ाई में लगे रहते थे और युद्ध का खच अमीरों के मत्थे फेंकते थे, परन्तु यह बात भी ग़लत है। साधारण प्रजा कभी लड़ाकू नहीं होती और न उसे युद्ध से प्रेम ही होता है। ग्रीक प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्र समर-प्रिय नहीं थे, यह बात भी स्पष्ट ही है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि मंसिडन के सामने उनसे कुछ भी न बन पड़ा और वे फिलिप के रोकने में पूर्णतः असमर्थ रहे।

हम ग्रीक प्रजातन्त्रों द्वारा भूमि को अमीरों से छीन कर पुनः सभाओं के मध्य बाँटे जाने की बात भी सुनते हैं। परन्तु इसका हमें एक भी ऐतिहासिक उदाहरण नहीं मिलता। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि यह प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रों का आदर्श मात्र था या यह कभी व्यवहार में भी लाया गया था।

अन्तिम और सब से बड़ा अभियोग यह है कि प्रजातंत्रात्मक शासन ग्रीस को विपत्ति से न बचा सका। प्रजातंत्रात्मक ग्रीस की अन्तरराष्ट्रीय नीति सदोष और त्रुटि पूर्ण थी और इसी कारण फिलिप

इतनी सुगमता के साथ अपना साम्राज्य स्थापित कर सका। परन्तु इसका यथार्थ कारण—जैसा कि पूर्व के किसी लेख में हम बतला चुके हैं—प्रजातंत्रात्मक ग्रीस की अयोग्यता नहीं वरन स्वयं नगर राष्ट्र की नीति थी वही संकीर्ण नीति कि जिसके द्वारा एक राष्ट्र अन्य सभी राष्ट्रों को अपना शत्रु अनुमान करता था। नगर राष्ट्रों के वर्तमान संगठन और नीति में किसी प्रकार का शासन फिलिप के रोकने में समर्थ नहीं हो सकता था। अतएव यह अभियोग पूर्णतः मिथ्या है।

अन्त में सभी अभियोगों, सभी प्रमाणों और सभी साक्षियों को ध्यान में रखते हुए ग्रीक प्रजातंत्रों पर हमारी सम्मति यही है कि ये प्रजातंत्र ग्रीक जनता की रुचि, इच्छा और भावों के अनुकूल थे। प्रजातंत्र स्थायी होते थे और इसके द्वारा राष्ट्र की श्री और गौरव की वृद्धि हुई थी। इसके द्वारा लोगों की वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा होती थी तथा बुरा से बुरा प्रजातंत्र भी अन्य प्रकार के शासनों से अच्छा था। अमीरों पर निस्सन्देह अत्याचार होते थे और उनका धन शोषण होता था और शायद न्याय में भी अमीरों के साथ पक्षपात-शून्य व्यवहार नहीं किया जाता था। परन्तु यह केवल मात्र उसी श्रेणी-युद्ध Classwar का प्रतिबिम्ब था कि जिसकी घोषणा महर्षि मार्क्स ने बहुत समय के बाद की है। यह ग्रीक प्रजातंत्रों के लिए कोई खास और स्थानीय बात नहीं है; यह सार्वभौमिक बात है और इसके लिए उपाय ढूँढ़ना संसार के विद्वानों और हितैषियों का परम कर्तव्य है। ग्रीक प्रजातंत्र के ऊपर किये गये अत्याचार अमीरों और गरीबों के प्रतिद्वंद का साधारण फल था। और क्या अमीर लोग पूर्णतः निर्दोष थे? क्या वह वैयक्तिक हित के लिए राष्ट्रीय कल्याण मंगल पर कुठाराघात करने के लिए सदा तत्पर नहीं रहते थे? क्या वह राष्ट्र को उलट पुलट करने के लिए सदा षड़यंत्रों की रचना नहीं किया करते थे? क्या वह सदा राष्ट्र के शत्रुओं से मेल करके अपने हित साधन के प्रयत्नों में न लगे रहते थे? ऐसी प्रतिद्वंदमय अवस्था में और हो ही क्या सकता था? जनता में स्वतंत्रता के भावों के जागृत होने से तथा अधिकार और समानता प्राप्ति की कामना के उदय होने से समग्र अमीरों के प्रति द्वेष भाव का जन्म होता है। आज के बोलशेविक रूस पर भी यही अभियोग लगाया जा रहा है। अमीरों और गरीबों की प्रतिद्वंदिता केवल ग्रीक ही का प्रश्न नहीं यह संसारमात्र का प्रश्न है। यह प्रश्न आज भी उतना ही जटिल और महत्वपूर्ण है जितना कि यह प्राचीन समय में था। केवल ग्रीस ही ने अत्याचार नहीं किये हैं। क्रांति की अवस्था में सर्वत्र ऐसा ही होता है। पुनः आज के साम्यवाद की तो यह स्पष्ट नीति ही है। हम आज भी भूमि तथा उत्पादन के सभी साधनों को जातीय सम्पत्ति बनाये जाने की बात सुन रहे हैं। चोरी, लूट और न्याय के सम्बन्ध में हमारे विचार आज परिवर्तित हो रहे हैं। चोरी, लूट और न्याय के सम्बंध में बहुत लोग अपने विचारों को आज पूंजी मूलक शिक्षा का फलमात्र समझने लगे हैं। अतएव अमीरों के लूटे जाने का दोष ग्रीक राष्ट्रों के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। यह ग्रीक राजनीति की कोई विशेषता नहीं थी। प्रजातंत्रात्मक भाव के पूर्णरूप से उदय होने पर ऐसा ही होता है। क्रांति और द्वंदमय अवस्था में ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

"क्षीणालोक"

लेखक—काव्यतीर्थ श्री उदयशंकर भट्ट 'हृदय'।

(१)

हृदय—मन्दिर होता है भग्न,
क्षीण संस्कारों की स्मृति मूर्ति।
भ्रष्ट हैं जहां तहां कुछ अङ्ग,
दे रही जो अतीत की स्फूर्ति॥

(२)

मलिन आभा, सम्भाषण शून्य,
शिथिल प्रतिभा, नीरव सा स्थान।
डूबती उतराती है आज,
विलुप्त स्मृति करती सज्ञान॥

(३)

गर्भ में भूतकाल के गया।
विश्व का अनुपन उज्वल रूप,
लुप्त यद्यपि है तो भी आज
खड़ा है सुदृढ़ धारणा स्तूप॥

(४)

हृदय में होती है कुछ कसक,
टूटते खुलते मन के बन्द।
याद आती है प्रतिमा वही,
विश्व-सुखमा लख होती मन्द॥

(५)

बलाएं करतीं राई—लौन,
निछावर था सौन्दर्य अनूप।
फूल शरमाते उसको देख
रहा वह कथावशेष स्वरूप॥

(६)

मान तज मान जोड़ कर हाथ,
खड़ा रहता था सविनय साथ।
चित्र सा लिखा सदा वह रहा,
किया जिस तरफ कटाक्ष निपात॥

मेघदूत-रहस्य

लेखक—श्रीयुक्त इलाचन्द्र जोशी।

हमारे साहित्यालोचकों ने कालिदास के काव्यों की व्याख्या इतने सङ्कीर्ण रूप से की है कि समझ में नहीं आता क्यों वे लोग इतने पर भी उन्हें महाकवि कहने में नहीं सकुचाते। "उपमा कालिदासस्य"—केवल इसी उक्ति को वे लोग कालिदास की प्रतिभा के परिचय के लिये पर्याप्त समझते हैं। बहुत हुआ तो उनके शृङ्गार-रस-वर्णन की प्रशंसा कर दी जाती है। जिस महाकवि की कविता में विश्व-प्रकृति की अन्तरात्मा का निगूढ़ रहस्य तथा अनन्त सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, जिस श्रेष्ठ कलाविद की रचनाओं में भगवान के आनन्दमय स्वरूप की छटा दिखाई देती है, और जिसके गायन में अनन्त सङ्गीत का मूल स्वर ध्वनित हो उठा है, उसके काव्यों का इन समालोचकों द्वारा इस प्रकार अत्यन्त निर्दयता के साथ खून होता हुआ देख कर वास्तव में दिल दहल उठता है।

आज कल हिन्दी-साहित्य में अलङ्कार शास्त्र द्वारा किसी कविता की श्रेष्ठता की परख करने की

प्रथा चल गई है। यही कारण है कि हमारे साहित्यालोचकगण जयदेव की "निन्दति चन्दनमिन्दुकिरण मनुविन्दति खेदमधीरम्" आदि पदावलियों अथवा विहारी के "अञ्जन रञ्जन हूं बिना खञ्जन गञ्जन नैन" आदि दोहों की प्रशंसा अत्यन्त पुलकित चित्त से करते हैं पर कालिदास के—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः ।
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥

जैसे अत्यन्त स्निग्ध,स्नेहरसमण्डित तथा सहृदयतापूर्ण पदों का दिल खोल कर रसास्वादन करने में वे लोग असमर्थ हैं। इस अत्यन्त सरल पर सरस पद को कालिदास ने अपने स्निग्ध, करुण तथा मधुर रस से अत्यन्त सुन्दरता के साथ सिञ्चित कर डाला है। उन्होंने इसके द्वारा यह दिखलाया है कि नर-नारी के उन्मत्त प्रेम का वर्णन करने का उनका पूरा अधिकार है। भगवान् के कमनीय, करुण तथा कोमल हृदय का अमृतमय रस भिन्न भिन्न स्वरूपों में अपने को व्यक्त करता है पर उस रस की कमनीयता सर्वत्र समान है। माता-पुत्र तथा भाई-बहन के बीच सुललित स्नेह का जो भाव वर्त्तमान रहता है उसके भीतर की कमनीयता तथा प्रेमिक-प्रेमिका के मधुर प्रणय के लालित्य में विशेष अन्तर नहीं पाया जा सकता। जिस कवि की हृदयानुभूति अत्यन्त तीव्र तथा जीवित होती है वह प्रत्येक रूप में इस कमनीयता का रसास्वादन कर लेता है। वह अलकापुरी की प्रियतम-ध्यान-मग्ना विरह-व्यथिता मदन-ताप-जर्जरिता कामिनी के उष्णोच्छ्वास में जिस मधुर अतीन्द्रिय तथा आध्यात्मिक रस का आस्वादन करता है, प्रीति स्निग्ध दृष्टि से नवीन मेघ की ओर ताकने वाली भ्रूविलासानभिज्ञ जनपद वधू की कल्पना भी उसके हृदय में उसी प्रकार का मधुमय रस सिञ्चित करती है। "अभिज्ञानशाकुन्तल" में सखियों के बीच का पारस्परिक स्नेह, समग्र तपोवनवासियों का शकुन्तला के प्रति अपूर्व वात्सल्य भाव, तरुलता-पशुपक्षी के प्रति शकुन्तला का अत्यन्त स्वाभाविक सौहार्द्य का चित्र प्रस्फुटित करके तथा इन सब भावों के साथ ही साथ दुष्यन्त के प्रति उसके कामजन्य अपूर्व प्रणय की छवि अङ्कित करके कालिदास ने अन्त को भगवान् के आनन्दमय रूप के इन भिन्न भिन्न स्वरूपों की परिणति एक रूप में दिखलाई है। जो कवि शृङ्गार रस को बाह्येन्द्रिय की तृप्ति की सामग्री समझ कर उसका वर्णन करने बैठता है वह भ्रूविलासानभिज्ञ वधू की प्रीतिस्निग्ध दृष्टि में विशेष आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता। वह प्रमत्त प्रणय का वर्णन करते करते उसकी मत्तता में बहा जाता है पर उस प्रणय के भाव को अपने वश में करके उसका माधुर्य निःसारित करना नहीं जानता।

"मेघदूत" की व्याख्या करते हुए हमारे अधिकांश साहित्यालोचक लिखा करते हैं कि इसमें प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अच्छी तरह से किया गया है और इस काव्य की विशेषता इसी में है। वे लोग इस बात का ख़याल नहीं करते कि यदि केवल प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में ही इस अमर काव्य की विशेषता होती तो वह संसार के प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों तथा गुणिजनों के इतने अधिक आदर की सामग्री कदापि न होता। क्योंकि ऐसे हज़ारों नगण्य काव्य संसार-साहित्य में भरे पड़े हैं जिनमें प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बड़े कौशल के साथ किया गया है। अलङ्कार शास्त्र में जिस प्रकार शृङ्गार, करुणा, हास्य आदि रसों का वर्णन पाया जाता है उसी प्रकार संसार के श्रेष्ठ गीतिकवियों की रचनाओं में एक ऐसे रस का परिचय पाया जाता है जिसका प्राकृतिक दृश्यों के साथ बहुत कुछ सम्बन्ध रहता है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन उस रस का मुख्य उद्देश्य नहीं है। उस रस की गति प्रकृति के बाह्यावरण को भेद कर उसके बहुत भीतर प्रवेश करती है। इस रस को हम नैसर्गिक रस कह सकते हैं। मेघदूत के पूर्व भाग में इसी रस की प्रधानता पाई जाती है। अलङ्कार-शास्त्र के कृत्रिम नियमों की दुहाई देने वाले इस स्वतः स्फूर्त रस का अनुभव किस प्रकार कर सकते हैं?

बहुधा लोगों को कहते हुए सुना जाता है कि कवि लोगों की कल्पना एक सम्पूर्ण अवास्तविक लोक से

प्रसूत होकर आती है। अब देखना चाहिये कि यह धारणा कहां तक ठीक है। इस प्रश्न की मीमांसा करने के पहले इस बात पर विचार करना होगा कि वास्तविकता है क्या चीज। हमारी जिस माता ने हमें अत्यन्त यत्न के साथ अपने स्नेहरस द्वारा लालित किया है उसकी वास्तविकता का विचार यदि हम उसकी सूरत उसके आकार-प्रकार द्वारा करने लगें और उसकी स्नेहवृत्ति को, Freud की theory के अनुसार केवल सन्तान-पालन के लिये उपयुक्त वृत्ति की दृष्टि से ही देखें तो हमारे हृदय में उसके प्रति कृतज्ञता का भाव अवश्य उत्पन्न हो सकता है पर हम उसके प्रति भक्ति के उस अनन्त सौन्दर्यमय भाव का अनुभव कदापि नहीं कर सकते जो हमारी आत्मा के अन्तरतम प्रदेश से उद्भूत होता है। इस अनुपम भाव का अनुभव करने के लिये हमें माता के बाह्यस्वरूप को उसका वास्तविक स्वरूप न समझ कर उसके बाह्यजीवन के समस्त कार्यों की आड़ में जो एक आध्यात्मिक जीवन का स्रोत निरन्तर बहता जाता है, उसी को उसका वास्तविक जीवन मानना पड़ता है; कारण कि, उसी के द्वारा उसके वास्तविक स्वरूप की छाया हमारे हृदय-पटल पर प्रगाढ़ रूप से अङ्कित हो जाती है। माता के इस आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान बुद्धि द्वारा बोधगम्य हो सकता है पर वह इन्द्रियों से परे है और उसके मातृत्व के निष्कलुष, पवित्र भाव का अनुभव करके जिस अनन्त लोक से हमारे हृदय में भक्ति का भाव उत्सारित होता है वह अतीन्द्रिय होने पर भी अवास्तविक नहीं है। यही बात विश्व-प्र ति के सभी रूप तथा सभी रसों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। जो कवि प्राकृतिक दृश्यों के बाह्य-स्वरूप को ही सब कुछ समझ कर उसी का गुण गाने लगता है वह दया का पात्र है। श्रेष्ठ कवि सर्वदा प्रकृति के अभ्यन्तर में स्थित वास्तविकता का ही आदर करता है और उसी का गीत गाता है। जब किसी कल-नादिनी नदी के निर्जन-तट के ऊपर से हम एक हंस श्रेणी को उड़ते हुए देखते हैं तो एक अपूर्व सौन्दर्य की तरङ्ग हमारी आंखों के सामने खेलने लगती है। इस नगण्य दृश्य के द्वारा हम एक अनन्तलोक के सौन्दर्य का अनुभव करने लगते हैं और हमें सच्चिदानन्द के आनन्दमय रूप का परिचय स्वतः मिलने लगता है। इस दृश्य के जिस रूप का अनुभव हम इन्द्रियों द्वारा करते हैं उसके द्वारा हम कदापि अनन्तलोक का परिचय नहीं पा सकते। हंसों के परों की कोमलता, उनके रङ्ग की सफ़ेदी, नदी जल की स्वच्छता आदि गुण बाह्य-सौन्दर्य के लक्षण हैं। पर जो भाव इन्द्रियों से अतीत है, जिसके द्वारा विश्व-प्रकृति के छिन्न-विच्छिन्न सौन्दर्य में सामञ्जस्य का अनुभव होता है, उसका परिचय इस बाह्य-रूप से प्राप्त नहीं हो सकता। इस भाव का अनुभव हम तभी कर सकते हैं जब, हम इस दृश्य की आड़ में छिपी हुई सत्ता का ज्ञान प्राप्त करें। कवि की कल्पना हमें वस्तु की इसी आभ्यान्तरिक सत्ता का अनुभव कराती है। कालिदास ने मेघदूत में जिस कल्पना का परिचय दिया है वह कदापि उनकी खामखयाली नहीं कही जा सकती। वह हमें निखिल विश्व के अनन्त तथा वास्तविक सौन्दर्य से परिचित कराती है।

उपनिषत् में कहा गया है "आनन्दरूपममृतं यद्विभाति" अर्थात इस निखिल जगत में जो कुछ भी प्रकाशित होता है वही भगवान का आनन्दमय अमृत रूप है। किन्तु सभी लोग तो स्वतः इस अमृत रूप से परिचित नहीं होते। हम लोग वस्तु के बाह्य-रूप और बाह्य सौन्दर्य पर ही मुग्ध हो सकते हैं पर उसके भीतर भगवान का जो आनन्द रूप विराज रहा है उसका तो हमें कुछ भी पता नहीं चलता। पर कवि अपनी सौन्दर्यमयी रचना द्वारा जब हमारी आंखों में ज्ञानाञ्जन शलाका लगाता है तो हमारे सामने अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उस अमृत रूप का आभास कुछ न कुछ अंश में अवश्य झलकने लगता है। यह आनन्दमय रूप ही प्रत्येक वस्तु का वास्तविक रूप है।

जब हम वर्षा के प्रारम्भ में स्निग्ध गम्भीर घोष

करनेवाले जलधर का नवीन कलेवर देखते हैं तो चित्त में स्वतः जन्म-जन्मान्तरव्यापी विरह का एक अपूर्व भाव सञ्चारित होता है। इस जन्म में पूर्व जन्म से जो विच्छेद होगया है उसका दुःख हमारे हृदय के अन्तस्तल में हमारे अनजान में जन्म के प्रारम्भ से ही निरन्तर आलोड़ित होता रहता है। वर्षा के प्रारम्भ में नवीन मेघ के दर्शन से हमारे पूर्व जन्म की प्रियतम स्मृतियों का अस्पष्ट आभास इस जन्म की करुणा पूरित मधुर वेदनाओं के साथ मिश्रित होकर हमारे रोम रोम में एक आनन्दमय पुलक संचारित कर देता है। यह भाव केवल विरही ही नहीं, सुखी जनों के चित्त में भी एक अन्यमनस्क भाव ला देता है। इसीलिए कालिदास ने कहा है 'मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्तिचेतः।' इसी मूल भाव को लेकर कालिदास ने मेघदूत की रचना प्रारम्भ की है। इसी भाव को लेकर बाद को इस रचना में उन्होंने विश्वप्रकृति की अन्तरात्मा के भीतर स्थित रस को धीरे धीरे अत्यन्त तृप्ति के साथ ग्रहण किया है।

वर्षाकाल में जब हम आकाश में गर्भाधान के क्षण से परिचित हंसगण को बलाका बाँधकर आनन्द के साथ उड़ते हुए देखते हैं, जम्बू कुंज की श्यामल समृद्धि का रस ग्रहण करते हैं सजलनयन शुक्लापांग के पुलक का स्मरण करते हैं, हरित कपिश वर्णवाले कदंबवृक्षों को निरीक्षण करने वाले सारंगों का अवलोकन करने लगते हैं पौरंगनाओं के विद्युद्दाम कटाक्ष और जनपद-वधू की प्रीतिस्निग्ध दृष्टि का आनन्द भोग करते हैं निर्जन-नगरी के छतों पर रात्रि के समय सुप्त हुए पारावतों का विचार करते हैं और चातकों का मधुर नाद सुनते हैं तो तरुलता, कीटपतंग, पशुपक्षी, जलस्थल के साथ मानव-हृदय का युगयुगान्तव्यापी सौहार्द्य का जो भाव उसके अत्यन्त तल-प्रदेश में दबा हुआ रहता है वह धीरे धीरे स्फुरित होने लगता है। जिस ब्रह्म ने सृष्टि के आरम्भ में कहा था एकोऽहं बहुस्यां प्रजायये—एक मैं बहुत रूपों प्रकट हूंगा--उसका अद्वैत रूप इस आश्चर्य-प्रद अनुभूति के द्वारा झलकने लगता है। इस अनुभूति के द्वारा हमें यह भी मालूम होने लगता है कि यह जो रमणीय दृश्य हम देख रहे हैं और मधुर शब्द श्रवण कर रहे हैं इन सब की प्रियस्मृति का नाश इसी जन्म में हमारे देहावसान के साथ ही नहीं हो जायगा, यह प्रिय अनुभूति जन्म से जन्मान्तर को अनन्त काल के लिये धावित होती रहती है। "अभिज्ञानशाकुन्तल" के इस श्लोक में यही भाव दर्शाया गया है—

> रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
> पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोपि जन्तुः।
> तच्चेतसा मनसि नूनमबोध पूर्वम्
> भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥

काम का जो भाव मनुष्य की अनन्तकालव्यापी चेतना को निरन्तर प्रदीप्त करता जाता है, उसके भीतर कितने प्रकार के मधुर रस, कितने प्रकार के रङ्ग भरे हुए हैं, इसका कुछ ठिकाना भी है! इन रसों के मूल तत्व में मत्तता नहीं है, आनन्द है प्रवृत्ति की ताड़ना नहीं है, विलास है; तिक्तता नहीं है, माधुर्य है। लेकिन इसका भोग करने के लिये कठिन संयम चाहिये। अन्यथा जिस कवि अथवा रसिक की प्रवृत्ति असंयत होती है वह पाशविक प्रवृत्ति को उत्तेजित करनेवाले क्षणस्थायी रस का आस्वादन ही कर सकता है,—जो रस जन्म-जन्मान्तर के साथ हमारे हृदय का संयोग कराता है, उसका अनुभव वह तिलमात्र भी नहीं कर सकता। कालिदास की संयत तथा निर्लिप्त प्रकृति ने उनके सौन्दर्य-पिपासु हृदय को सौन्दर्य का यही अमृतमय रस पान कराया है। समस्त विश्व प्रकृति के अनन्त प्राण के भीतर अनन्त काल से जो अमृतमय रस चिदानन्दमय ब्रह्म की रसमय अनुभूति से उत्साहित होकर बहता जाता है उसीके स्रोत में नरनारी के युगल-सम्मिलन से निःसृत काम रस को एकीभूत कर देने से उसके भीतर भी भगवान का आनन्दरूप प्रतिभात होने लगता है। अलकापुरी के नर-नारियों

ने इस कामजन्य अमृतमय रस का अनुभव कर लिया है इसी कारण चिरकाल से इसे पान करके भी वे तृप्त नहीं हैं –

> आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
> र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।
> नाप्यन्यस्मात् प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्तिः
> वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥

उच्च-साहित्य का उद्देश्य सर्वदा यही रहा है कि उसके द्वारा सौन्दर्य तथा रस के सृष्टिकर्त्ता का चिदानन्दमय स्वरूप, क्या जड़ क्या चेतन-सभी पदार्थों में हमारी दृष्टि के सामने विभात हो जाय। जो कवि सौन्दर्य के मूल सृष्टिकर्त्ता से कुछ भी सरोकार न रखकर काव्य द्वारा रस-सृष्टि करना चाहता है वह स्वाभाविक नियम के प्रतिकूल काम करता है और अपने आपको ठगता है। कालिदास ने "मेघदूत" में नर-नारी के उत्कट प्रेम का चित्र खींच कर जो आनन्द पाया है उसे उन्होंने अकेले भोग करना नहीं चाहा है। "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायये" यह वाक्य जिस सृष्टिकर्त्ता ने घोषित किया था उसने जिन जिन स्वरूपों में अपने को प्रकट किया है उन सब को उन्होंने इस आनन्द यज्ञ में निमन्त्रित किया है जिससे उसके अद्वैत भाव की महिमा परिस्फुट हो उठे, और यह बात स्पष्ट हो जाय कि जो प्राण इस तृण के भीतर सञ्चारित हो रहा है उसीके बल से यह सुन्दर लता लहलहा रही है, उसीके कारण यह रमणीय पुष्पप्रफुल्लित हो रहा है, उसीके बल से यह नदी कलनाद करती हुई बही जा रही है, उसीकी अनुभूति से यह हंसगण बलाका बाँधकर प्रसन्नचित से आकाश में पर फड़फड़ा रहे हैं, उसीके संयोग से यह गुरु-गम्भीर गर्जन करनेवाला नीलमेघ ऊपर से पृथ्वी पर अपनी स्निग्धभिन्नाञ्जनाभा विस्तारित कर रहा है, उसीकी चेतना से यह सुन्दर पुच्छवाला मयूर मनोहर नृत्य कर रहा है, उसीके ज्ञान से रसिक नरनारी अलकापुरी में सुमधुर क्रीड़ा में रत हैं। निखिल विश्व में इसी प्रकार अनन्त प्राण का खेल चल रहा है। विश्वप्रकृति के सौन्दर्य के भीतर इस अनन्त प्राण की खोज करना ही मेघदूतरचना का उद्देश्य रहा है। केवल कालिदास ही नहीं, संसार के सभी श्रेष्ठ गीति-कवियों का लक्ष्य सर्वदा यही रहा है। वर्डसवर्थ, शेली, टेनिसन, वाल्ट-ह्विटमैन, रवीन्द्रनाथ—सब इसी आनन्द यज्ञ के पुरोहित हैं।

सङ्कीर्ण भावोंवाला कवि प्रकृति के साथ अपने प्राण के ऐक्य का अनुभव नहीं करता। वह यह बात समझकर भी नहीं समझता कि प्राकृतिक दृश्य उसे इसीलिये आनन्द दान कर रहे हैं कि उनके भीतर प्राण की वही धारा बह रही है जो उसकी आत्मा के भीतर प्रवाहित हो रही है। "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" के भाव की उपलब्धि ही साहित्य-साधना का चरम फल है।

इस भाव को मन में रखकर मेघदूत पढ़ने से इस अनिन्द्यसुन्दर काव्य की महिमा दृष्टिगोचर हो सकती है।

राधा और सखी।

भक्तराज सूरदास कृत।

(चित्रकार—श्री० दत्तात्रय)

(मलार)

यह ऋतु रूसिबे की नाहीं।
बरषत मेघ मेदिनी के हित प्रीतम हरषि मिलाहीं॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाहीं ते तरवर लपटाहीं।
जे जल बिन सरिता ते पूरण मिलि न समुद्रहि जाहीं॥
जोवन धन है दिवस चारि को ज्यों बदरी को छाहीं।
मैं दम्पति रस रीति कही है समुझि चतुर मन माहीं॥
यह चित धरहु सखी री राधा दै दूती को बाहीं।
सूरदास हठ चलहु राधिका सँग दूती पिय पाहीं॥
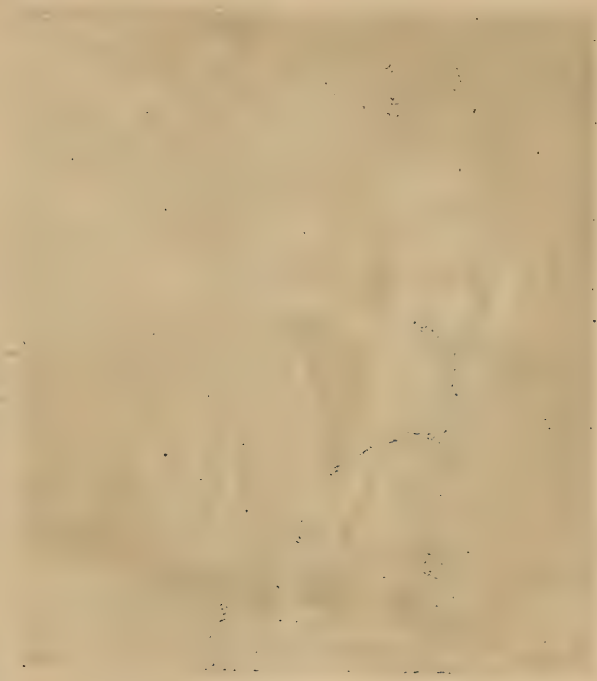
मेरे प्रेम !

लेखक—श्रीयुक्त श्रीरत्न शुक्ल

हृदय से उमड़ उमड़ कर भाव अश्रु का रख स्वरूप सुकुमार
पत्र पर गिरते अपने आप वर्ण लिख जाते हैं साकार
आब्धि के मूर्तिमान मृदु मर्म मोतियों से रहस्य आगार
न जाने किस भाषा के शब्द व्यक्त करते क्या क्या उद्गार

लिखा अपना ही चलता नहीं न स्मृति में ही अंकित बात
पढ़ो, शायद तुम कुछ पढ़ सको स्वयं तुम हो रहस्य अज्ञात

दो पुराने पत्र।

लेखक—श्री गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा।

जिस समय महात्मा ईसा मसीह ने सीरिया में जन्म ग्रहण किया था उस समय उस देश में रोमन साम्राज्य का आधिपत्य था। महात्मा ईसा मसीह अपने धार्म्मिक सिद्धान्तों का प्रचार बहुत थोड़े से मनुष्यों के बीच में करने पाये थे कि यहूदियों का प्रबल द्वेष उनके विरुद्ध भभक उठा। उनके ऊपर कई अभियोग लगाए गए और उन्हीं के आधार पर वे शूली पर चढ़ा कर मार दिये गए। रोम राजधानी में महात्मा ईसा के उपदेश, जीवन घटना, और मृत्यु की खबर सब लोगों पर पूरी तरह विदित नहीं थी। बहुतों ने उनका नाम तक नहीं सुना था। रोमन मिति ८१५ में (अर्थात् ईसा के शूली पर चढ़ने के बासठवें साल) एस्कुलापियस कुल्टेलस ने एक पत्र अपने भतीजे के पास भेजा था जिससे उस समय महात्मा ईसा मसीह के सम्बन्ध की बात बड़े स्पष्ट रूप से मालूम होती है। कुल्टेलस रोम नगर का एक नामी हकीम (वैद्य) था और उसका भतीजा ग्लाडियस एन्सा उस समय सीरिया प्रदेश में एक सैनिक अफसर था। मैं यहां पर कुलटेलस के पत्र का और एन्सा के उत्तर का हिन्दी—अनुवाद उपस्थित करता हूं। इनके पढ़ने से यह बात मालूम होगी कि महात्मा लोग जिस काम के लिये इस संसार में आते हैं उस काम की महत्ता का उस समय के बहुत ही कम लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं, पर जैसे जैसे समय बीतता है वैसे ही उसका प्रभाव संसार में बढ़ने लगता है।

पहला पत्र।

मेरे प्यारे भतीजे,

कई दिन हुये मैं एक रोगी को देखने के लिये बुलाया गया था जिसका नाम था—पाल। चेहरे से वह यहूदी मालूम हुआ, और वह रहने वाला रोमन साम्राज्य के अंतर्गत किसी पूर्व प्रदेश का था। वह सुशिक्षित था और उसका आचरण और स्वभाव अच्छा था। मुझको मालूम हुआ कि वह इस नगर

में किसी मुकदमे के सम्बन्ध में आया है। भूमध्य महासागर के पूर्व की ओर के प्रदेशों में शायद सीजिरिया (सीरिया) देश का एक मुकदमा यहां अपील में आया था, और वह पाल उसी की पैरवी में आया हुआ था। लोगों ने मुझ से कहा था कि पाल 'अविवेकी और खूनी' है, उसने जनता के विरुद्ध और कानून के विरुद्ध व्याख्यान दिये हैं। और वह सर्व-साधारण को राजद्रोही बनाता है। पर मैं ने उसको बहुत बुद्धिमान और सत्यवादी पाया।

मेरे एक मित्र ने, जिनको सैनिकों के साथ एशिया-माइनर में बहुत दिनों तक रहने का संयोग हुआ था, मुझ से कहा कि 'इफीसस प्रदेश में मैं ने इस मनुष्य की वार्त्ता सुनी थी। वहां पर वह एक नये ईश्वर की महिमा का उपदेश दे रहा था' मैं ने अपने रोगी से तदनन्तर पूछा था कि 'क्या मेरे मित्र का कथन सत्य है। क्या सम्राट के विरुद्ध आप प्रजावर्ग को भड़काते हैं।' इसके उत्तर में पाल ने मुझ से कहा था कि 'वह साम्राज्य जिसका तजकिरा मैंने किया है। वह इस संसार का नहीं है।' और इसके बाद उसने बहुत सी अचरज-भरी बातें कहीं, जो मेरी समझ में नहीं आईं। मुमकिन है उसकी यह हालत ज्वर के कारण हुई हो।

उसके स्वरूप और स्वभाव ने मेरे चित्त पर एक विलक्षण प्रभाव जमाया। उस दिन जब मैं ने सुना था कि बेचारा पाल एक राजमार्ग पर मारा गया है तब इस समाचार से मैं बहुत खिन्न हुआ था। तुम्हारे पास इस पत्र को भेजने का मेरा यही अभिप्राय है। अब की बार जब तुम जेरुसलेम में जाओ, तब वहां मेरे मित्र पाल की वार्त्ता जो मिल सके सो मालूम करके लिखना, और साथ ही उस विचित्र यहूदी धर्म्म-प्रचारक की वार्त्ता भी लिखना जो, मालूम होता है, बेचारे पाल का गुरु और शिक्षक था। मेरे गुलाम जब उस धर्म-प्रचारक की बात सुनते हैं तब बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। कई तो उसके बताये नये स्वर्ग की बात करते पाये जाने के कारण शूली पर चढ़ा कर मार दिये गये हैं। मैं इन बातों के सम्बन्ध में जो सत्य-कथा हो सो ही जानना चाहता हूं।

तुम्हारा प्यारा चचा,
एस्कुलापियस कुल्टेलस।

दूसरा पत्र।

[छ सप्ताह के बाद, ग्लाडियस एन्सा ने अपने चचा के पास निम्नलिखित उत्तर भेजा।]

मेरे प्यारे चचा,

मैंने आपका पत्र यथा-समय पाया और मैंने आपकी आज्ञाओं का पालन किया है।

दो सप्ताह हुये मेरी पलटन जरुसलेम भेजी गई थी। जरुसलेम पुराना नगर है। अब बिलकुल उजाड़ हो रहा है। पिछले सौ बरसों के बीच में इस नगर और प्रान्त में अनेक बार विप्लव हुए हैं और अनेक बार सारा नगर लूटा गया है। कोई एक महीने से हम लोग इस नगर में डेरा डाले हुए हैं। कल के दिन हम लोग यहां से पेटरा को कूच करेंगे। सुना गया है कि, पेटरा में कुछ अरबों ने उपद्रव मचाया है। आज संध्या समय मैं आपके पत्र का उत्तर लिख रहा हूं। पर सविस्तर वार्त्ता मुझको न मिली है और न लिखने का समय ही है।

मैंने इस नगर के कई बूढ़े मनुष्यों से बातें की हैं, पर कोई मुझको पूरी कथा ठीक ठीक नहीं सुना सका। कई दिन हुये एक साधारण व्यापारी हम लोगों के डेरे में कुछ सौदा बेचने आया था। मैंने उससे जैतून के कुछ पेड़ ख़रीदे और साथ ही मैंने पूछा कि 'क्या तुम उस मसीह की कुछ ख़बर रखते हो जो बिलकुल जवानी में, अपने उपदेश के कारण, शूली पर चढ़ा कर मार दिया गया था।' उसने जवाब दिया—'हां, कुछ बातें मुझको बख़ूबी याद हैं। उसी मसीह की फांसी देखने के लिये मेरे बाप मुझको गोलगोथा ले गये थे, वह स्थान एक पहाड़ है जो इसी नगर के बाहर है। मेरे बाप का यह भी मतलब था कि, मैं ख़ुद देखूं कि, यहूदियों के नियम और विश्वास के विरुद्ध जो चलते हैं उनका क्या दुर्दशा

होती है।' उस व्यापारी ने मुझको जोसेफ नामक एक आदमी का ठिकाना बताया था और कहा था कि—'जोसेफ ईसा मसीह का एक जीवित मित्र है, और यदि आप उस मसीह के बारे में कुछ अधिक जानना चाहते हैं तो उसी जोसेफ के पास जाइये और उससे बातचीत कीजिये।'

आज प्रातःकाल मैं जोसेफ के घर पर गया था। वह अब एकदम बूढ़ा हो गया है। वह अपनी जवानी में एक झील का मछुआ था। मछली मारना उसका व्यवसाय था। उसकी स्मरण-शक्ति एकबारगी खराब नहीं हुई है। मैंने उस मछुए से उस समय का कुछ हाल, सच्चा हाल, सुन पाया, जिस समय मैं अनुमान करता हूं मेरा जन्म भी नहीं हुआ था। जोसेफ ने मुझसे कहा कि, वह समय बड़े दुःख और चिन्ता का था।

उस समय सम्राट टाइबेरियस रोम-साम्राज्य का चक्रवर्ती अधीश्वर था। जुड़िया और समरिया प्रदेश का शासक उस समय पौनटेयस पाइलेटस था। जोसेफ को पाइलेटस के सम्बन्ध में कुछ विशेष ज्ञान नहीं है। जहां तक उस समय के जीवित लोगों में पाइलेटस के चरित्र और शासन-योग्यता का ज्ञान था इससे यही अनुमान होता है कि; लोग उसको एक ईमानदार अफ़सर मानते थे। ७८३ व ७८४ साल में पाइलोटस को एक बलवा हो जाने के कारण जेरुसलेम नगर को जाना पड़ा था। सुनने में आया था कि,एक युवक जो नज़ारेथ के एक बढ़ई का लड़का है रोम-साम्राज्य के विरुद्ध विप्लव का सूत्रपात करना चाहता है। पर आश्चर्य की बात यह थी कि हम लोगों के स्थानीय अफ़सरों को, जो प्रायः स्थानीय घटनाओं की पूरी ख़बर रखते थे, इस बात का कुछ भी पता नहीं था। जब इन अफ़सरों ने तहक़ीक़ात की तब मालूम किया और वैसो ही कैफियत मन्त्री के पास भेजी कि, बढ़ई का लड़का (अर्थात् मसीहा) एक सुयोग्य नागरिक है और उस पर किसी तरह का अभियोग नहीं लग सकता है। पर यहूदियों के बूढ़े बूढ़े नेता इस विचार के विरुद्ध हो गये थे और ईसा-मसीह के विरुद्ध सम्मति देने लगे। ग़रीब यहूदी जनता के बीच में ईसामसीह के प्रति प्रेम भाव को वे नापसंद करने लगे। उन यहूदी-नेताओं ने ईसामसीह के विरुद्ध एक खड्यंत्र रचा। उन्होंने पाइलेटस से कह दिया कि मसीहा कहा करता है कि जो यहूदी दिनरात महात्मा मूसा के धर्म्म सम्बन्धी तत्वों के अध्ययन में जीवन लगाता है वह किसी तरह उन ग्रीक, रोमन और नास्तिक पुरुषों से अच्छा नहीं है जो अपनी जीविका के लिये अपनी मर्य्यादा के महत्व को भूल जाते हैं पाइलेटस इस प्रकार की बहस से किसी तरह विचलित नहीं हुआ, और उसने उस युवक को अपराधी नहीं स्वीकार किया। पर जब कट्टर यहूदियों ने बेचारे ईसा को बरछों से कष्ट देना प्रारम्भ किया और उनके अनुयायियों की हत्या शुरू की तब पाइलेटस ने ईसा को कैद कर रखा, क्योंकि उसके प्राण की रक्षा का यही एक मात्र उपाय था।

पाइलेटस को तब तक ईसा और यहूदियों की तक़रार का सच्चा कारण मालूम नहीं हो सका था। जब जब वह यहूदी धर्म्माचार्यों से पूछता था कि 'अपनी हानियों का कथन कीजिये' तब तब जवाब में वह यही सुनता था कि ईसा नास्तिक है, पाखंडी है, राजद्रोही है। अंत में एक दिन, पाइलेटस ने ईसा को अपने पास बुलाया और स्वयम् उनसे कुछ बातें कीं। कई घण्टों तक उन दोनों की बातें होती रहीं। पाइलेटस ने ईसा से उन विद्रोहात्मक उपदेशों के सम्बंध में पूछा जिनकी बात वह पहले सुन चुका था। पाइलेटस ने पूछा-'क्या तुम विद्रोहात्मक उपदेश गालीली समुद्र के तट पर लोगों को सुनाया करते हो? ईसा ने उत्तर दिया-'मैं अपने धर्म्म-विचारों में राजनैतिक स्थिति की तरफ़ कभी इशारा नहीं करता हूं। मुझको मनुष्य के शरीर से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना उसकी आत्मा से है। मेरा आशय है कि सब लोग अपने पड़ोसियों को अपने भाई की तरह समझें और एक परमेश्वर के साथ भक्ति करें जो समस्त प्राणियों की सृष्टि-करता है।'

पाइलेटस स्टोइक सम्प्रदाय तथा यूनान देश के प्रसिद्ध दार्शनिकों के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचित था और इसीलिये ईसा के उपदेश और आशयों में कुछ राजनीति विरुद्ध बातें नहीं देखीं। और इसीलिये पाइलेटस ने ईसा को बचाने के लिये दूसरी बार भी प्रयत्न किया। उसने ईसा को प्राण दंड से बचाया और कुछ दिनों तक इसी तरह बचाता रहा। पर इस अवसर में यहूदी लोग, अपने कट्टर पुरोहितों से उत्तेजित किये जाने पर बहुत बिगड़ गये और क्रोध के नशे में विमत्त हो गये। इस घटना के पूर्व भी जेरूसलेम में कई बार विल्पव हुए थे, और रोम से बहुत दूर होने के कारण उन विप्लवों को दबाने के लिये यथोचित प्रबन्ध न हो सके थे, क्योंकि जेरूसलेम के सन्निकट रोम के सिपाहियों की संख्या बहुत ही कम रहती थी। सिसेरिया में जो रोमन राज्याधिकारी अवस्थित थे, उनके पास शीघ्र ही यह समाचार पठाया गया कि पाइलेटस ईसामसीह के उपदेशों का शिकार बन गया है और उसके आचरण से यहूदी-प्रजासमूह असंतुष्ट है। दरख्वास्तें भेजी गईं जिनमे यही प्रार्थना की गई थी कि पाइलेटस साम्राज्य का शत्रु हो गया है इसलिये वह अब वापस बुला लिया जाय। आप जानते ही हैं कि रोमन साम्राज्य-नीति अपनी परदेशी प्रजा के साथ झगड़ा जारी रखना कभी पसंद नहीं करती इसलिये देश में परस्पर वैमनस्य के कारण पारिवारिक कलह को बढ़ने से रोकने के उद्देश्य से पाइलेटस को विवश होकर, अपनी इच्छा के एकबारगी विरुद्ध, ईसा को दण्ड देना ही पड़ा। पाइलेटस ने ईसा को प्राणदण्ड दिया। ईसा ने इस दंडाज्ञा को बहुत धीरता और आत्म-सम्मान के साथ सुना और अपने शत्रुओं को क्षमा प्रदान की। जेरुसलम के अशिक्षित और असभ्य जनता की हँसी और ठहाका के गगनभेदी शब्द के बीच में ईसा मसीह शूली पर चढ़ाकर मार दिये गये।

यही वार्ता जोसेफ ने मुझ से कही है और जिस समय वह इस कथा को कहता था उस समय उसके चिकुठे गालों पर आंखों से आंसू का प्रवाह बह रहा था। जब मैं उसके पास से चला उस समय उसको मैंने एक अशर्फी दी और कहा कि लो तुम अपने काम में इसे लाना। पर उसने अशर्फी लेने से इनकार किया और कहा कि—इसको मुझ से अधिक किसी गरीब को दे देना। मैंने तब उससे कई प्रश्न आप के मित्र पाल के सम्बन्ध में पूछे। जवाब में उसने कहा कि—मैं पाल का कुछ जानता हूं। उससे मुझ को घनिष्ठता नहीं थी। वह खीमा बनाने वाला था। पर उसने अपने व्यवसाय को छोड़ दिया था और उसके बदले में प्रेममूर्ति और क्षमासागर भगवान की महत्ता का उपदेश देता फिरता था जो यहूदियों के उन भगवान से बिलकुल फर्क है, जिनके बारे में यहूदी पंडित और धर्माचार्य हमारे कानों को रात दिन भरते रहते हैं। इसके बाद पाल एशिया के पश्चिम भाग में और ग्रीस में भ्रमण करने लगा और पतित और गुलामों को उपदेश देने लगा कि तुम लोग उस प्रेम रूपी भगवान के ही प्यारे पुत्र हो। सुख सब लोगों को भोगने का अधिकार है—जैसे अमीरों को वैसे गरीबों को भी। जो अपने जीवन को सचाई और ईमानदारी के साथ व्यतीत करता है जो दीन दुखी और पीड़ितों का उपकार करता है वही सुख भोगने का अधिकारी है।

मैं आशा करता हूं मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर पूरी तरह दिया है। ईसा की यह कथा जहाँ-तक देश के शासन से संबंध रखती है मेरी समझ में किसी प्रकार से हानिप्रद नहीं है। पर साथ ही यह भी मैं लिख देना चाहता हूँ कि हम लोग रोम निवासी इस प्रान्त के लोगों के अर्थात पुराने और नये निवासियों के हृदय और स्वभाव का अच्छी तरह नहीं समझ सके हैं। मुझको यह जानकर बहुत दुख हुआ कि कुछ कट्टर यहूदियों ने आपके मित्र पाल को मार दिया था।

प्यारे चचा मैं चाहता हूं कि मैं घर को वापस आ जाऊँ। आप का आज्ञाकारी भतीजा—

ग्लाडियस एन्सा।

अनोखा पागल

लेखक—श्री मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी'

मलयानिल की मधुर बास दे चन्द्र-किरण को करके पान-
मूक प्रकृति के शान्त अंक में करता मन्द मन्द प्रस्थान।
सुखद कल्पना की वीणा पर गाता फिर अनन्त-संगीत।
स्वर-तरंग में विश्व बहा चलता है शान्त न किंचित भीत॥

* * *

वह पागल है, निकट पहुंच कर क्या अपने को पाओगे?
थिरक थिरक कर तालों पर उसमें ही लय हो जाओगे!!!

वंशीध्वनि या अशनि-निनाद!

लेखक—श्रीयुक्त राजबहादुर लमगोड़ा एम० ए०, एल-एल० बी०।

बांसुरी की एक तान है: "क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप" (हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़ और, हे शत्रु पीड़क अर्जुन तू उठ) क्या वीररस से भरी ओज-गुणसम्पन्न यह तान है। मुरदों में जान डालने वाली, सोए हुओं को जगाने वाली, पीछे हटने वालों के क़दम आगे बढ़ाने वाली, काँपते हुए पैरों में अंगद के पैर की जमावट पैदा कराने वाली क्या ही प्यारी धुन है। श्रीमती डाक्टर बेसेंट ने भी अत्यन्त उत्साह जनक शब्दों में इस वाक्य का उल्था किया है: "Shake off this paltry faint heartedness! Stand up," और अंगरेजी कविता के पंडितों के कानों में इन शब्दों के पड़ते ही तुरन्त मिल्टन के ये वाक्य गूंज उठते हैं "Awake, arise, or be for ever fallen" (जागो, उठो या फिर सदा सर्वदा के लिये पड़े रहो)

अन्तर केवल इतना ही है कि मिल्टन के वाक्य शैतान के मुख से निकले हैं। भगवान के न्यायशाली शासन के विरुद्ध दानवगणों को अपनी पताका उठाने को उत्तेजित करने के लिये, नरक की दहकती हुई भट्टी की ज्वाला में भुनते हुए निराश दैत्यों के अन्दर उत्साह बढ़ाने के लिये, अधर्म को धर्म पर विजय करने के हेतु उभारने के लिये मिल्टन का शैतान ये वाक्य कहता है। आह! वर्तमान संसार के मतवाले देशों को इस घोर संग्राम पर कटिबद्ध करने और जनता को उभाड़ने के लिये कब कब ये शब्द नहीं कहे गए? पशु बल के पुजारियों ने इन शब्दों का कितनी बार प्रयोग नहीं किया? परन्तु भगवान की बांसुरी की लय इस वास्ते नहीं थी कि अर्जुन मतवाला होकर अपने पवित्र गांडीव धनुष से निकले हुये बाणों की गांसी में अन्याय का रक्त लगा ले; कृष्ण गोपाल की बांसुरी पशु बल की प्रतिष्ठा स्थापित करने और धर्म के हनन के लिये नहीं बजी थी। फिर बजी किस लिये थी?

संसार में उस समय कुछ कलियुग की छाया पड़ने लगी थी। अधर्म का झंडा आकाश में फहरा रहा था और उस पर बने हुये तामसिक गौरव से चमकते सुवर्ण के सितारों के सामने, कुछ देर को, धर्म के सूर्य्य की छटा धीमी सी पड़ गई थी। धर्मिष्ठ पाण्डवों को पहले लाक्षागृह में भस्म कर डालने की चेष्टा की गई थी; पर भगवान की महान दया से जब वह खरे सोने की तरह उस आग से और भी कान्तिमय होकर निकले और जब द्रौपदी के स्वयम्बर में अर्जुन की विजय हुई तथा उसके बाद चक्रवर्ती धर्मराज सिंहासनासीन हुए तो दया--धर्मशून्य लोभियों के माथे ठनकने लगे। कर्ण ने रोमन शासन नीति के सैकड़ों बरस पहिले ही Devide & rvle (भेद-शासन) की चाल बताई। किसी किसी ने तलवार भी खनखनाई; बेचारे भीष्म इत्यादि के धर्म उपदेश कायरता के चिन्ह कहे गए। अन्त में जाली पाँसों की चाल चल गई। संसार में फिर थोड़ी देर के लिये अधर्म की रात आई और धर्म का सूर्य्य अस्त हुआ। द्रौपदी का अपमान—उस अबला का चीर हरण—पांडवों का बनोवास-और बन में उन पर अनेक कष्ट, क्या क्या नहीं बीती ? पर पाण्डव सब सह गए।

उधर अधर्म निशा में कौरव दल अपनी जुगनू वाली चमक को ही प्रकाश मान चुका था और समझ चुका था कि अब भला तेरह बरस के बनोवास रूपी अस्ताचल में धर्म का सूर्य्य अब क्या उदय होगा ? खूब खुशी के बाजने बजते थे, मगर राजा विराट के पुत्र के रथ से अर्जुन के बाण सनसनाते हुए निकल पड़े और कौरवों के दिल धड़क उठे। पाण्डव रूपी सूर्य के सामने अधर्म के "उडु-गणों" की "ज्योति मलीन" पड़ने लगी।

धर्मराज युधिष्ठिर को छोड़ कर और सब भाई बार बार उस दुर्दशा की अवस्था में बनोवास के समय दाँत पीस कर रह जाते थे, अब उन्होंने भी अपने भाई से लक्ष्मण की तरह बिगड़ कर कहा कि—

"कहं लग सहिय रहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥"

अर्जुन के बाण, नकुल की तलवार और भीम की गदा फरकने लगी।

ऐसे समय में कृष्ण भगवान और महाराज युधिष्ठिर ही केवल शान्ति के उपासक थे; क्योंकि इन की आंखों के सामने युद्ध के घोर परिणाम फिरते थे। रक्त की नदियां, बच्चों और विधवाओं की आहें, देश की लूट,-सब आन की आन में अपने अपने भयंकर चित्र लिये इन के सामने आती थीं।

जो लोग जल्दी से कृष्ण को लड़ाने वाला समझ लेते हैं वे कृष्ण की उन कोशिशों को भूल जाते हैं जो उन्होंने शान्ति रक्षा के लिये की थीं। कृष्ण पाण्डवों की ओर से बसीठी बन कर गए। दुर्योधन को समझाया पर जिसकी बाणी—

'सूच्यग्रं नैवदास्यामि बिना युद्धेन केशव'

की रट लगा रही थी उसका दिल और दिमाग शान्ति की बात कैसे सुन सकता था।

तमोगुण प्रधान जगत के नेता दुर्योधन को कृष्ण की बात भला क्यों भली लगती ?

लड़ाई की तैयारी शुरू होती है। देश देशान्तर की सेनाएं कुरुक्षेत्र की प्यासी भूमि में जमा हैं। अपने सम्बन्धी—गुरु, सब को सामने खड़े देख और युद्ध का परिणाम समझ कर अर्जुन का दयालु हृदय भी कांप उठता है और वह लड़ने से इन्कार करता है। कि ऐसी विजय भी किस काम की ? उसका दिल बैठा जाता है। नेत्रों से रौद्ररस की लालिमा लुप्त हो जाती है। उसकी जगह करुण रस के आंसू डबडबा आते हैं। फिर धर्म के लिये कौन लड़े और धर्म की विजय कैसे हो ? तब फिर क्या संसार में अधर्म की ही जै हो ? नहीं। धर्म्म-संस्थापक कृष्ण को यह मञ्जूर नहीं।

माखन मिसरी के खवैया, गोपाल कन्हैया, वृन्दावन रास रचैया अपनी बांसुरी बजाता है। अब की उसकी बंशी-ध्वनि गोपियों को नहीं बुलाती।

अबकी बार उसने अर्जुन के हृदय-वृन्दाबन में एक अनोखा रास रच रखा है। इस मन्त्र बा "वृन्दावन कुंजन में माधुरी लतान तर यमुना पुलिन में मधुर बजी बांसुरी" का गीत नहीं गाया जा रहा। इस बार तो धुन ही निराली है वंशीध्वनि है या अशनि-निनाद ? कृष्ण कहते हैं:—

क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्तोतिष्ठ परन्तप।

मतिराम और भूषण।

लेखक—श्री अनूप शर्म्मा बी० ए०।

सिन्धु-साहित्य व्योम वाणी के,
दोनों राकेश और पूषण हैं।
रक्त है एक, रंग दो लेकिन,
धन्य मतिराम और भूषण हैं॥

*　*　*

अपने माता-पिता के चारों में,
श्रेष्ठतर राम और लक्ष्मण हैं।
जिनकी दो रँग रँगी कलाओं में,
व्यक्त अजया-जया के लक्षण हैं॥

*　*　*

दोनों विपरीति मार्ग में चलकर,
आ मिले क्या उछाह अपनी है।
लख पड़ी यक चतुर्भुजी मूरत,
बाँह भाई की बाँह अपनी है॥

*　*　*

सारदा सार दे हुई तुष्टा,
बन गए श्रेष्ठ काव्य पाकर हैं।
मञ्जु शिरमौर कान्यकुब्जों के,
कैसे धाकर बने सुधाकर हैं॥

*　*　*

सार संयुक्त काव्य अम्बर के,
ये अलंकार-ग्रन्थ-गोटे हैं।
इनकी सत्ता में है महत्ता यह,
दोनों से 'कालिदास' छोटे हैं॥

*　*　*

काव्य-ब्रह्माण्ड के उठाने को,
बन्धु दो तारे हो गए क्षण में।
छोड़ सह-वास जा बसे ध्रुव से,
एक 'उत्तर' में एक 'दक्षिण' में॥

एक 'नौरंग' में रँगा जाकर,
एक 'सौरंग' में समाया है।
एक शृङ्गार-शान्त का साथी
एक को रौद्र-वीर भाया है॥

डायरी के कुछ पृष्ठ

दिल्ली के सत्याग्रह की कहानी

लेखक—"सत्यवादी" सम्पादक श्रीयुक्त इन्द्र वेदालंकार विद्यावाचस्पति।

[इस लेख माला में श्रीयुक्त इन्द्र वेदालंकार विद्यावाचस्पति दिल्ली के सत्याग्रह की कुछ वे बातें दिखलायेंगे जो अभी तक अन्यत्र कहीं प्रकट नहीं हुई हैं। सन् १९२१ ईस्वी में एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज कानपुर पधारे थे। उस समय स्वामीजी ने हमें दिल्ली के सत्याग्रह के सम्बन्ध में कुछ बातें बताने की कृपा की थी। हमने स्वामीजी से प्रार्थना की थी कि ये बातें यदि लेखबद्ध हो जायँ तो भारतीय इतिहास लिखने वाले किसी भावी इतिहासज्ञ का बड़ा कल्याण हो। स्वामीजी ने कहा था : इन्द्र लिख रहे हैं। अब इन्द्र जी ने उस विवरण को प्रभा में लिखने का वचन दिया है। आशा है "प्रभा" के पाठक इस लेखमाला को पढ़ कर प्रथम जीवन ज्योति की एक शानदार झलक के पुनर्दर्शन कर सकेंगे।

—"प्रभा"—सम्पादक]

(१)

जादू की नगरी

यह कहना बहुत ही कठिन है कि दिल्ली नगर की स्थापना किसने की। चाहे किसी ने की हो, पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि उस कारीगर ने इसकी नींव में जादू की ईंट अवश्य रख दी होगी। दुनिया में जादू कोई वस्तु न हो, परन्तु दिल्ली की नींव में जादू अवश्य है। जरा इतिहास के पृष्ठों को खोल कर देखिये। सामान्य दशा में दिल्ली नगर बहुत ही सुस्त, नाज़ुक और विलासी दिखाई देता है। अभी क्या पठानों और मुगलों के आधिपत्य के समय जो विदेशी यात्री भारत में आये, उन्होंने भी दिल्ली के निवासियों की सम्पत्ति और शान के ही गीत गाये हैं, यहां के निवासियों की वीरता के नहीं। बाज़ार में निकल जाइये, जो कुछ देखियेगा वह आपको बता देगा कि इस नगरी में पान सुपारी चबाने वाले, मलमल के नाज़ुक कपड़े पहरने वाले, दिन में चार बार कंघी पट्टी करने वाले और करारी चाट उड़ाने वाले श्रीमानों के सिवा यदि कोई है तो बाहिर से आये हुए लोग हैं दिल्ली वाले सब एक ही ढाँचे में ढले हुए प्रतीत होंगे।

सामान्य दशा में दिल्ली को देख कर यही विचार होगा कि इस नगर के निवासी सार्वजनिक जीवन की कठोरताओं को बर्दाश्त नहीं कर सकते। दिल्ली का बाह्यरूप ऐसा ही है परन्तु नींव में जो जादू है, उसकी शक्ति अद्भुत है। वह दिल्ली, जो नाज़ुक और विलासी है, भारत के इतिहास का केन्द्र है। भीम का गदा और पिथौरा की तलवार की शान देखने के पीछे पठानों की उग्रता और मुगलों की समृद्धि के करिश्मे भी इसी नगरी ने देखे हैं। कुछ समय तक अनाथा रह कर फिर वह योरोपियन चहल पहल का केन्द्र बन गई है। इतिहास के पेंचीदा क्षणों में इस विलासपुरी और साम्राज्यों की प्रेतपुरी की ईंटों और दीवारों में न जाने कहां से चमक आ जाती है। इस जगह रहने वाले पुरुषों में न जाने कौन सी बिजली दौड़ जाती है कि आन की आन में तिलस्मी रंग बँध जाता है, घटनायें सर पर भागने लगती हैं और जो इतिहास वर्षों में न बनता, वह महीनों में बन जाता है।

काम हुआ और तिलस्मी रंग जाता रहता है। फिर बाज़ार में जाइये तो देखिये, वही तंजेब के

प्रभा
SWARAJ
फल
मुक्ति
Release
National honour
Economy
जागृति
Awakening
Verma
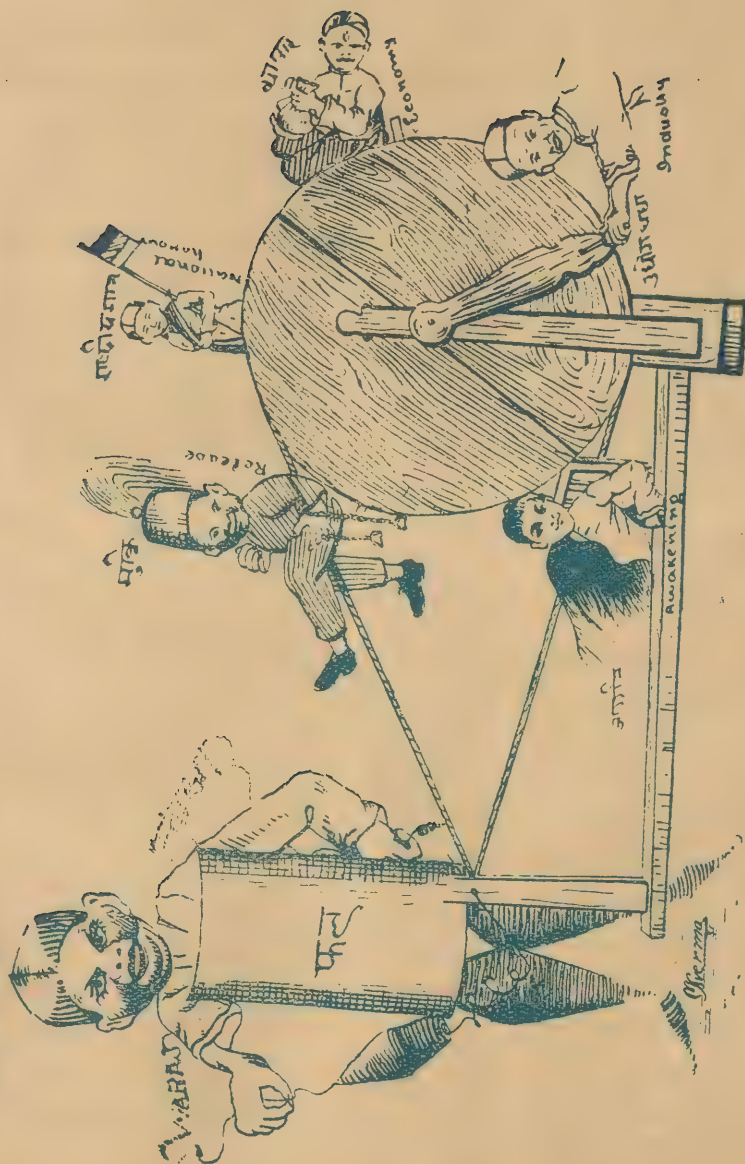
चर्खे से स्वराज्य।

कुर्ते, वही इत्र की खुशबू और वही करारी चाट-फिर वही दिल्ली हो जाती है जो हमेशा से चली आई है। यही कारण है कि दिल्ली को समझना बहुत कठिन है। जिस नगरी ने कई साम्राज्यों को ग्रस लिया है और कई राज परिवारों का लहू पिया है उसमें कुछ न कुछ असाधारणता होनी चाहिये। उस असाधारणता को पहिचानने और परखने के लिये कल्पना शक्ति चाहिये। जिसमें वह कल्पना शक्ति है, वह दिल्ली का सुख से शासन कर सकता है। जिसमें वह नहीं है वह कार्य को अवश्य बिगाड़ देगा और समझ भी न सकेगा कि, कार्य क्या बिगड़ गया, जो कहानी इस लेखमाला में सुनाई जायगी, वह ऊपर कही हुई सचाइयों का एक जीता जागता नमूना है।

१९१८ की कांग्रेस दिल्ली में हुई। उसे एक तमाशा समझ कर हज़ारों ने देखा और घरों को चले गये। किसी ने कुछ सम्मति बनाई, और किसी ने कुछ। किसी ने कांग्रेस की सफलता पर प्रसन्नता प्रकट की पर किसी ने कांग्रेस के संचालन में दिल्ली की गौणता को देख कर सिर हिलाते हुए कहा कि 'बेशक दिल्ली ने रुपया जमा करके कांग्रेस का अधिवेशन कर लिया परन्तु राजनैतिक जीवन का अभाव इस नगरी को रोग की तरह लगा हुआ है।' वह लोग यह विचार लेकर गये कि दिल्ली एक शानदार मुर्दा है, जिसमें रूह डालने की चेष्टा की जा रही है। उन लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही जब तीन महीनों में ही उनके दिल्ली संबंधी पुराने विचारों को भारी धक्का पहुंचा। कहां मुर्दा दिल्ली और कहां सत्याग्रह, कहां चांदनी चौक और कहां गोलियों का सामना। कहां जुम्मा मस्जिद और कहां एक सन्यासी का व्याख्यान। यह सब परस्पर विरोध लोगों के लिये समझने भी कठिन थे। दिल्ली को विलासपुरी समझते लोगों को चमत्कार सा प्रतीत हुआ जब उन्होंने सत्याग्रह सम्बन्धी समाचार पढ़े और दिल्ली की हड़ताल का भारतव्यापी असर देखा।

दिल्ली की हड़ताल अपनी उपमा नहीं रखती राजनीतिक उद्देश्य से इतनी लम्बी हड़ताल वर्तमान युग में किसी शहर ने नहीं की। दिल्ली व्यापार का केन्द्र है, वह कपड़े की मण्डी है। एक दिन भर दूकानें बंद रहने से लाखों की हानि हो जाती है। ऐसे स्थान पर दो सप्ताह से अधिक समय तक पूरी हड़ताल का रहना एक ऐसा चिन्ह था, जिसे यदि भारत सरकार ज्ञान की आंखों से देखती तो न जलियाँवाला बाग होता और न मार्शल ला लगाना पड़ता, न भारतव्यापी आंदोलन होता और न घोर अशांति उत्पन्न होती। भारत सरकार ने उस हड़ताल को केवल चाम की चक्षुओं से देखा और धोखा खाया। यह कहानी उसी धोखे की है इसे पढ़कर शत्रु और मित्र दोनों की आंखें खुल सकती हैं:—

हमारी कहानी ४ फरवरी के सायंकाल से आरम्भ होती है। उस समय दिल्ली लन्दन बैंक के मैदान में एक सभा हुई, जिसका उद्देश्य रौलट ऐक्ट का विरोध करना था। परन्तु वह कहानी समझ में नहीं आ सकती जब तक हम उससे पहले एक वर्ष के वातावरण पर दृष्टि न डालें। १९१८ की कांग्रेस दिल्ली में होने वाली थी। उस वर्ष इस प्रशान्त नगरी में कुछ असाधारण चहल पहल रही। उधर होमरूल लीग का भी काफी शोर था। दिल्ली में वह प्रतिध्वनित हुए बिना न रहा। होमरूल लीग के पुरुषार्थी मंत्री देशभक्त ला० शंकरलाल ने राजधानी को जगाने का बहुत यत्न किया। महीने में दो तीन राजनैतिक सभाओं को औसत बनी रही। ला० शंकरलाल जी की सहायता के लिये दिल्ली के अन्य भी कई नौजवान खड़े हो गये। भिवानी के पं० नेकीराम शर्मा उस वर्ष दिल्ली में बराबर गर्जते रहे। परिणाम यह हुआ कि दिल्ली के शासक घबरा उठे। मि० आसिफ अली और पं० नेकीराम शर्मा को सार्वजनिक सभाओं में न बोलने का हुक्म दिया गया। दोनों ही महानुभावों ने एक केवल सभासदों की सभा में व्याख्यान देकर दिल्ली के शासन को लल-

कारा, जिसके उत्तर में दोनों देशभक्तों पर मुकदमें चलाये गये। इन घटनाओं ने शहर में काफ़ी सनसनी पैदा कर दी, और जीवन की ज्योति को कुछ कुछ जलाये रखा। उधर कांग्रेस को स्वागतकारिणी सभा के कारण भी थोड़ी बहुत चहल पहल जारी रही! इस प्रकार १९१८ का पूरा वर्ष दिल्ली में सजीव रहा। वर्ष के अन्त में कांग्रेस का अधिवेशन होने को था। अधिवेशन आरम्भ होने से ५ दिन पूर्व एक छोटो सी घटना संघटित हुई। हिन्दी के दैनिक विजय का उर्दू के अन्तःपुर दिल्ली नगर से जन्म हुआ।

द्वन्द्वयुद्ध

अर्चन कैसे करूँ ? मानसी पूजा में आते हैं विघ्न,
धरते धरते ध्यान चित्त हो जाता है चञ्चल, उद्विग्न,
देवि, तुम्हारी मृदुल चरण-चौकी पर कैसे डालूं फूल ?
उन्मादिनी वासना उड़ा रही है मेरे हिय में धूल।
उन प्यारे चरणों का सादर आह्वाहन!! कैसा सुख स्वप्न!
उत्कण्ठिता भावना का कैसा यह अनुचित विफल प्रयत्न

× × × × ×

सुकुमारता लिये हाथों में तुम्हें खड़ी वह रीझ रही—
यह कठोरता इधर हृदय में बैठी हुई पसीज रही।
धीरे धीरे बूँद बूँद बह जायगी—बह जाने दो
चाह रहेगी--उसको भी चरणों ही में रह जाने दो।

—'नवीन'

मेरा अफगानी जाकट

लेखक—प्रोफेसर श्यामसुन्दरलाल चोरड़िया, एम० ए०

बजाज ने कहा कि कपड़ा भूटान से आया है। मुमकिन है ऐसा ही हो मगर फिर भी इतना सुखद वस्त्र इतनी सर्द जगह से आये हम यक़ीन करने के लिए तयार नहीं। शिमले के एक दर्ज़ी ने सी इसे अफगानी जाकट का नाम दिया। वह अपने फन में बड़ा उस्ताद है। कपड़ों को आरामदह बनाने में सचमुच उसे कमाल हासिल है। उसके लिये कपड़ों को कई दिन तक खींच खाँच कर शरीर पर फिट करने की तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ती। पहनते ही चट मालूम होने लगता है कि गोया वे कई दिनों से बदन पर हैं।

सन् १९०८ की बात है। एक दिन हम उस दर्ज़ी की दुकान पर जा धमके कहने लगे :—

आवारागर्दी के लिए एक जाकट की ज़रूरत है, समझे? जी चाहे वैसा उसे काटना मगर दो बड़े बड़े चोरपाकट ज़रूर रखना। खरगोश छिपाने के लिए नहीं। सिर्फ रङ्ग साजी का डिब्बा एक दो किताब, एक राइटिंगपेड कुछ नाश्ते की सामग्री, और ऐसी वैसी छोटी मोटी चीजें आ जायें बस।

यह बात तुम्हें उसकी उत्पत्ति और उम्र का खयाल दिला देने के लिए काफी है।

उसने कहाः खातिर जमा रखिये, जनाब, ऐसा जाकट बनाऊंगा कि जो आप के फख़्र का बाइस होगा।

हां उस पर हम को नाज़ था और है।

"रौंपदार" ही केवल एक ऐसा शब्द है जो उसकी मौजूदा अवस्था का ठीक फोटो खींच सकता है। कोहनियों और कफों में तो अब सिर्फ अस्तर ही है। बाकी सब जगह खुर्दुरा है। कहीं कहीं तो सिलाई भी निकल गई है। जीर्ण शीर्ण है। दिन दिन उसकी हालत अबतर होती जा रही है तो भी हमारी तबीयत उसे छोड़ने को नहीं होती। उसके साथ सुखद स्मृतियां हैं......

एक दिन आंधी पानी में वह जाकट हमारे साथ था। हम किसी रमणीक पार्वत्य प्रदेश में विचर रहे थे। दस मील दूर एक वर्जीनीया तम्बाकू का दिन हमारा इन्तज़ार कर रहा था। हमें उस तम्बाकू की सख्त ज़रूरत थी। उसे पाने का हमने पक्का इरादा कर लिया था।

ऐसे मौसम में होशियार मल्लाहों की भी नाव चलाने की हिम्मत नहीं पड़ती। ऐसे में उस वेगवती पहाड़ी नदी में किश्ती ले जाना खुद-कुशी करना था। किन्तु धुन ही तो ठहरी। हम कब मानने वाले। बोट के पाल चढ़ा दिये। पानी मूसलाधार बरस रहा था। हवा पाल के साथ टकरा एक डरावनी आवाज़ कर रही थी। हम अंधाधुंध बहे जा रहे थे। वेढब तूफान का गीत हमारे ख़ून में घुस गया और हमें प्रतीत होने लगा कि हम भी इस चराचर को थर्रा देने वाली रौद्र प्रकृति के अंश हैं।

ख़ैर किसी तरह उस दिन जान बची। हमने एक काम में हाथ डाला और उसे पूरा करके ही छोड़ा। जवानी को लोग दिवानी कहते हैं। शायद ठीक हो। मगर हमने उस दिन बहुत कुछ सीखा। जिसे बूढ़े बेवकूफ असम्भव कहते हैं उसे करके ही जवान बेवकूफ सबक सीखते हैं। जवानों की अकलमन्दी यही समझने में है कि बूढ़े बेवकूफ भूलते हैं कि वे भी कभी जवान थे।

कश्मीर में वह जाकट सितम्बर में एक दिन हमारे साथ था। हम मछली की शिकार को निकले थे। शिकार से तबियत भर गई। पहाड़ी के प्राकृतिक सौन्दर्य को निरखते निरखते उसके शिखर पर जा पहुंचे। वहां एक अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव हुआ। फिर वहाँ बैठ तम्बाकू पी, जिसकी स्मृति आज भी ज्यों की त्यों बनी है। हमने नीचे संसार की ओर निगाह दौड़ाई। समझ गये। यहां संसार के मिथ्या आडम्बरों से छूटने पर हमको अर्वाचीन जीवन के पागलपन का ज्ञान हुआ। रहने की झक में मनुष्य सच्चा रहन सहन भूल जाते हैं। तुच्छ चीज़ों की प्राप्ति के हेतु मनुष्य जीवन के महान् उद्देश्यों की सरासर हत्या कर डालते हैं। कौस्तुभ को कांच के भाव बेचने में नहीं हिचकते हैं। मनुष्य अपने बैंक के हिसाब को मोटा बनाने की गरज से अपनी आत्मा का हनन करते हैं। वस्तुओं के सौन्दर्य को उनके मूल्य के मुकाबले में भूल जाते हैं। हमने समझा कि प्रेम, मित्रता, कला, कविता, संगीत प्रकृति ही ऐसी वस्तुयें हैं जिनकी मनुष्य को परवाह करना ठीक है। जब हमने बंसी और जाल को कन्धे पर रख गाते हुए सड़क की राह ली तो हमें संसारी दौड़ धूप के मिथ्या होने का पूरा विश्वास होगया। जब मालूम हुआ और अब मालूम है और मरे जब चाहे फूटी कौड़ी भी कफन के लिए पास

न रहे तब भी हमारा जीवन आनन्द से ही कटा होगा।

एक मृगनयनी इस जाकट को दिल से चाहती थी। चित्र तो उसके रद्दी की टोकनी में फेंक देने के लायक ही रहते थे मगर हां उसके हंसने में जादू था, विश्व का संगीत था। उसके गोरे गोरे गालों में गुलमुर्ग की धूप और गुलाबी हवा थी, उसके केश यौवन की तरह अलमस्त थे।

शहर के जीवन से वह अनभिज्ञ थी। किन्तु उसका जगत संकीर्ण नहीं था। पर्वतमाला उसके परे नीला आकाश, तारे, विस्तीर्ण सरिता और एक छोटा सा पुस्तकालय। अहा कैसा अलौकिक वह जगत था! वह अपने सर को इस पुराने प्यारे धुंआधार जाकट के कंधे पर रख कर अपनी उस दुनिया का हाल सुनाती।

हां—मनुष्य भी कैसा विचित्र जीव है। उसे इस पुराने छीम छीम जाकट को छोड़ने से इतनी घृणा क्यों? आखिर इसका रहस्य क्या है? क्या इसलिए कि उसे साथ ले सालों जंगलों की खाक छानी है समुद्र की सैर की है, मच्छी का शिकार किया है और जीवन के गौरवान्वित दिन हंसी खुशी में काटे हैं? इसलिए कि वह उसके जीवन की खास खास घटनाओं का स्मरण दिलाता है या इसलिए कि साथ रखते रखते उस के स्वभाव से परिचित होगया है उसकी आदतों से हिल मिल गया है।

क्योंकि इस फटे पुराने जाकट को कोई भला आदमी अपने कपड़ों की आलमारी में रखना पसंद नहीं करेगा। और वो जाकट काम का भी क्या जिसे पहन सिवाय अँधेरी रात के बाहर नहीं जा सकते?

हम इसे किसी के हाथ बेचेंगे भी नहीं—इस वजह से नहीं कि इसका कोई ख़रीदार नहीं मिलेगा। हम इसे किसी को बख़शीस कभी न देंगे – इस डर से नहीं कि, इसे कोई स्वीकार नहीं करेगा। हां, पर फिर इस जाकट का उपयोग हो क्या...... यह तो निकम्मा है। कल हम इसको ज़रूर ठिकाने लगा देंगे।

कल—आह! हम इसकी होली करेंगे। जलायेंगे ज़रूर मगर किसी बेसमझ बालिका की तयार की हुई आग में नहीं।

नहीं—कल अर्धरात्रि में हम अपनी आख़री सैर को निकलेंगे। शहर से दूर जङ्गल की मधुर निस्तब्धता में किसी पहाड़ी की तलहटी में इसे अग्नि-संस्कार के लिए धड़कते दिल से रखेंगे। शीतल मंद सुगंधित पवन नक्षत्रमण्डित नीले आकाश के नीचे अकथनीय शांति प्रदान कर अतीतकाल की सुखद सुरभित स्मृति को जागृत कर देगा। वहां तारे, खुली सड़क और रहस्य होगा।

उषाकाल में हम शुष्क टहनियां इकट्ठी कर अग्नि प्रज्वलित करेंगे। उस पहाड़ी की गगनचुम्बित चोटी पर हम देवदार और पत्तियों की चिता बनायेंगे। और जब बाल रवि की प्रथम किरण क्षितिज में दिखेगी तब हम चकमक से आग पैदा कर उसमें बत्ती लगायेंगे......

और इस पुराने जाकट की जेबों से एक चिलम भर तम्बाकू के टुकड़ों का बूका एकत्रित कर साथ बीते सुखी दिनों की याद में पियेंगे। और फिर अतीतकाल की खुशियों के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए उस जाकट को धधकती हुई आग के हवाले कर देंगे...... उसकी धूम्र शिखा वहीं...... और उसके परे नीले आकाश में......

हां, एक शावकनयनी इसे चाहती...और वह अपने सर को इस पर धरती...और यदि तुम सचमुच समझते हो कि हम वाक़ै इस जाकट से जुदा होंगे तो भूलते हो।

फुलझड़ियां।

(बड़े लाट साहब ने फरमान जारी किया है कि उनकी सभाओं में लोग धोती पहन कर न जायँ; इस पर हमारे कवि मित्र विदग्ध महाशय ने निम्न लिखित फुलझड़ियाँ 'प्रभा' के अर्पित की है। हमें विश्वास है कि विदग्ध महाशय समय समय पर ऐसी फुलझड़ियाँ छुटाते रहेंगे।
—प्र० स०)

[१]

मजलिस बड़े लाट साहब की है आदम की वारी,
उसमें दिखलाई न पड़ेगा कोई धोती-धारी !
किन्तु पैन्ट—शैतान चैन से किसे बैठने देगा ?
सिर पर न सही,पैरोंपर चढ़ जकड़ कमर धर लेगा॥

[२]

शासक श्रीमन् बड़े लाट हैं,हम शाशित भिखमंगे हैं;
पर अपराध क्षमा हो तो ये अनुशासन बेढँगे हैं,
वस्त्र और भोजन रुचि पर हैं,अन्तर्दृष्टि डालिए तो·
हम धोती में, आप पैन्ट में, भीतर दोनों नंगे हैं !

[३]

लाट साहब की खुशी है, क्या कहा जावे, कहो ?
अन्यथा पतलून में क्या है कि धोती में न हो ?
या हमें जाँचा उन्होंने और समझा क्लीव है,
जो उतरवाली हमारी आज धोती भी अहो !

—विदग्ध

नैपाल।

लेखक—श्री० सद्गुरुशरण अवस्थी बी० ए०।

भौगोलिक स्थिति

भारतवर्ष के उत्तर और पूर्व की ओर नैपाल नाम का एक छोटा सा स्वतंत्र देश है। उसकी लंबाई लगभग ५०० मील और चौड़ाई करीब १३० मील है। नैपाल के उत्तर में बर्फ से ढकी हुई हिमालय की तराई है। और उसके पूर्व में शिकम है। पश्चिम और दक्षिण की ओर ब्रिटिश भारत है। नैपाली लोग बहुधा राजधानी के चारों-तरफ कुछ दूर तक की जगह को ही नैपाल कहते हैं। इस स्थान पर उसी छोटी सी जगह के विषय मे लिखा जायगा क्योंकि अन्य स्थानों के विषय में लिखा जाना बहुत कठिन है। नैपाल के लोग स्वभावत: बड़े भ्रमी होते हैं। यदि कोई अंगरेज उनके देश के विषय में कुछ जानने की लालसा से भ्रमण करने की इच्छा प्रकट करता है तो वह उसका कभी विश्वास नहीं करते। अन्य जातीय प्रवासियों को भी इसी कठिनता का सामना करना पड़ता है इसलिए नैपाल के विषय में बहुत सा हाल अभी तक गुप्त है।

सिजौली स्टेशन से उतर कर यात्री को शाल के जंगल में प्रवेश करना पड़ता है। चित्रों में इसी

का दृश्य दिया है। रुकसौल तक अच्छी पक्की सड़क बंधी है। वहाँ से सेमब्रासा ग्राम तक कच्ची सड़क है; यहाँ से एक बड़ी तंग गली जंगलों से होकर एक बड़ी सड़क से मिली है। यहाँ एक छोटी सी नदी है। गर्मी के दिनों में इसमें बहुत कम जल रहता है इस नदी से होकर वही रास्ता फिर शाल के जंगल में प्रवेश करता है। इसका भी दृश्य चित्रों में है काठमान्डू में जलाने के लिये लकड़ियाँ यहाँ से ही जाती हैं। आगे चलकर वही मार्ग कुरु नाम की नदी के लकड़ी के पुल पर से हथौड़ा नामक ग्राम तक गया है।
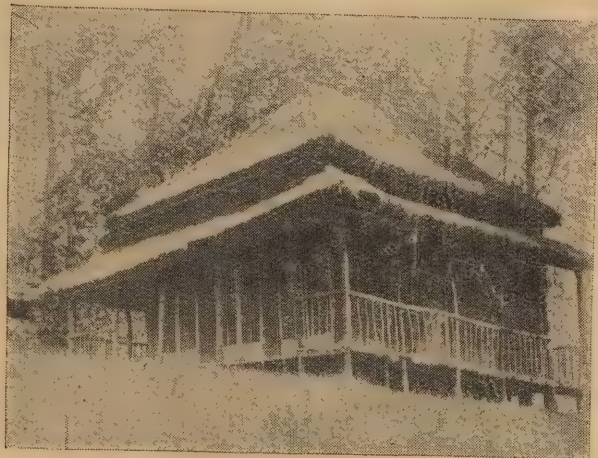
काठमाण्डू में नागार्जुन नाम पहाड़ पर नपाल राज के Prime Minister की बांस की बनी हुई कोठी

इस ग्राम में अप्रेल नवम्बर तक मलेरिया ज्वर बहुत होता है। इसलिये लोग यहाँ से भाग भाग कर और जगह रहने लगते हैं। नैपाल में जितना माल बाहर से आता है वह सब इसी ग्राम से होकर आता है इसीलिये यहाँ नैपाली सेना भी रहती है। यहाँ से होकर वही मार्ग राप्ती नदी के बीच से होकर निकला है। हथौड़ा से एक दूसरा रास्ता भी निकला है; यह मार्ग बड़े उपजाऊ स्थानों के बीच से गया है। इसी मार्ग में एक छोटी सो पहाड़ी के ऊपर शिशुपुरी नाम का किला है। इसी दुर्ग में गर्मी के दिनों में हथवा से सिपाही और अफसर लोग आकर रहते हैं। यहीं पर एक छोटा सा चुंगी-घर है जहाँ आये हुए माल पर कर वसूल किया जाता है। थोड़ी दूर चलकर भीमपेदी ग्राम से लगभग २३०० फीट की ऊँचाई तक यह रास्ता चला गया है। इस पहाड़ा के नीचे एक छोटी सी नदो है। कई छोटे नदी नालों को पार करते हुए वही मार्ग मखू ग्राम तक चला जाता है। यहां से नैपाल तक मार्ग ऊँचा नीचा है। नैपाल का यह मार्ग बड़ा ही उपजाऊ है। यह का जलवायु और स्थानों की अपेक्षा अधिक शीतल है। वह स्थान, जहाँ कि नैपाल की राजधानी है, और जहाँ नैपाली सेना रहती है, बड़ा ही सुन्दर और मनोहर है। इसके चारों तरफ पहाड़ हैं। इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई १५ मील है। फूल चौक सबसे ऊँची पहाड़ की चोटी है। यहाँ कोई बड़ी नदी नहीं है; किन्तु छोटी २ पहाड़ी नदियाँ बहुत सी हैं। भगमती और बसुमती यहाँ की सबसे बड़ी नदी हैं। काठमाण्डू के दक्षिण की ओर इनमें बहुत सी छोटी २ नदियाँ आ मिली हैं। इन नदियों में सर जंगबहादुर की

काठमाण्डू में मैदान

आज्ञा से बहुत से पुल बँधवाये गये हैं। सर जंगबहादुर यहाँ के मुख्य मंत्री बड़े ही चतुर

और राजनीतिज्ञ थे। कुश्तानी के बीच से एक छोटा सा रास्ता तिब्बत को जाता है। इस स्थान से हिमालय की बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ दिखाई देती हैं आगे चल कर त्रिशूल गंगा, जिसको गंडक भी कहते हैं, बड़े बेग से बहती है। किसी भी अँगरेज को त्रिशूल गंगा पार करने की आज्ञा नहीं है। यह स्थान बहुत ही घना बसा है। इसनें तीन बड़े २ शहर हैं। जिनकी जन संख्या लगभग ५ लाख से अधिक है।

इस मैदान में कवायद होती है और लोग सैर करने को जाते हैं—दूर पर "चन्द्र" कालेज दिखाई देता है

नैपाल की राजधानी काठमाण्डू है। यह नगर भगमती और बसुमती के संगम पर बसा हुवा है। इसके कई नाम हैं। राजा गुड़कामदेव ने इसको७२३ई० में बसाया था। काठमाण्डू एक बहुत सुन्दर नगर है। यहाँ की सड़कें बहुत अच्छी हैं। यहाँ की जन संख्या लगभग ५०,००० के है। यहाँ के मकान चौमञ्जिले तक हैं। नक्काशी का काम बड़ी सुन्दरता के साथ किया जाता है। सब अच्छे २ घरों में देवताओं की मूर्तियां खुदी हुई रहती हैं अथवा पक्षी या घोड़ों की आकृतियां अङ्कित रहती हैं। किन्तु; धीरे धीरे यह चाल उठती जाती है।

नगर के मध्य में महाराज का महल है। उसका बहुत सा हिस्सा पुराना है। इसमें नक्काशी का काम बहुत खूबी के साथ दिखाया गया है। महल बहुत ही सुन्दर और रमणीय है। इसके आस पास और भी कई इमारतें है। पास ही में कई बड़े २ मन्दिर भी हैं; उनमें बड़े २ वजनी घण्टे लटकते हैं। काठमाण्डू के मकान इत्यादि तो बड़े सुन्दर हैं परन्तु यहां गलियां बहुत छोटी हैं। और सारा शहर सफ़ाई की दृष्टि से बहुत गंदा है। महल की दक्षिण की ओर राजा प्रतापमल और उनकी रानी की प्रतिमायें बनी हुई हैं। जानवरों के रहने के स्थान भी बहुतही अच्छे बनेहुये है।

टोकरी में रख कर बीमार आदमी को इस तरह ले जाते हैं

काठमान्डू से दो मील की दूरी पर दूसरा शहर पाटन है यह शहर काठमान्डू से प्राचीन है। इसे राजा वीरदेव ने बनवाया था, उसका दूसरा नाम ललित पाटन भी है। इसमें काठमान्डू से भी अधिक मन्दिर हैं। और यह काठमान्डू से भी ज्यादा गन्दा है। इसकी दशा बड़ी ही शोचनीय है। बड़ी बड़ी इमारते सब धीरे धीरे गिरती जा रही हैं। शहर के मध्य में एक दरबार है; काठमान्डू सेना विभाग का यहाँ मुख्य स्थान है।

तीसरा नगर भाटगाँव काठमान्डू से नौ मील पर है। इस नगर की स्थिति राजा अनंगमल (ईस्वी

सन् ८६५) के समय से है। इसकी आकृत शिव जी के डमरू की तरह है दोनों नगरों की अपेक्षा यहाँ की सड़कें स्वच्छ हैं। यहाँ के घर भी अच्छी दशा में हैं। इसके देखने से मालूम होता है कि इस शहर की दिनों दिन उन्नति हो रही है। यहाँ की जन संख्या लगभग ३०,००० है। इसके मध्य में जय माल और फट्टा की दो छोटी २ प्रतिमाएँ हैं। ये दोनों नैपाली बड़े बीर थे। यहाँ पर और भी कई एक देवताओं की प्रतिमायें हैं। नगर के पश्चिम और दक्षिण की ओर बहुत से तालाब हैं, जिनमें चीन से

भाटगांव का फाटक-भीतर के मन्दिर दिखलाई देते हैं।

लाकर सोने और चाँदी की मछलियाँ रक्खी गई थीं। इसके अतिरिक्त साठ और छोटे २ शहर हैं जिनका कि विस्तार पूर्वक विवेचन इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं। इनमें से मुख्य थानकोट, कीर्तपुर, पशुपति शाख, गोकरन और शम्भूनाथ हैं। इन सब नगरों में यात्रियों के लिये बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। जगह जगह पर सराय और कुए हैं जिनकी रक्षा के लिये बहुत सा धन सरकार के पास जमा कर दिया गया है। किन्तु महँगी के कारण यह धन अब काफी नहीं। इस लिये इमारतों की दशा बहुत अच्छी नहीं है। नैपाल में मन्दिर बहुत अधिक हैं। वहाँ का प्रत्येक धनी मन्दिर बनाना अपना मुख्य कर्तव्य समझता है।

भाटगाँव के पास पीपल की जड़ों से बना हुआ एक देवस्थान

यद्यपि नैपाल एक छोटा सा देश है तथापि वहाँ के निवासियों में बहुत सी भिन्न भिन्न जातियाँ हैं।

भूटिया मर्द और औरतों का एक साथ नाचना

इनमें से मुख्य मुख्य गोरखा, किराती, भोटिया, नेवर इत्यादि हैं। इनमें से गोरखा सबसे अधिक हैं। नैपाल की प्राचीन राजधानी 'गोरखा' के चारों ओर पहले वह

लोग रहते थे। ये राजपूतों की सन्तान हैं। जिस समय मुसलमानों ने राजपूताना पर धावा किया था उस समय कतिपय भगोड़ू राजपूत नैपाल में जाकर बस गये थे। इन्हीं की सन्तान सब गोरखे हैं। नैपाल

भाटगांव के मन्दिर राजा "मल्ल ?" की मूर्ति थम्भे पर दिखाई देती है

शाबरू ग्राम में भूटिया लोग अनाज को छिकला निकालने के लिए कूट रहे हैं

गरुड़ की मूर्ति पाटन में

पाटन में एक राजा की कोठी

के राजा लोग अपनी उत्पत्ति उदयपुर के राजपूतों से बतलाते हैं। ये राजपूत कमाऊँ पहाड़ियों से होकर 'गोरखा' नामक स्थान तक फैल गए थे और क्रमशः

नैपाल की प्राचीन जाति पर उन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया।

गोरखा लोग सुडौल और सुन्दर हाते हैं। उनकी आकृति भारतवासियों से बहुत कुछ मिलती जुलती है। वे बड़े हृष्ट पुष्ट और वीर होते हैं किन्तु मिहनतका काम वे पसन्द नहीं करते। खेती किसानी अथवा किसी प्रकार की शिल्पकारी को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अधिकतर ये लोग काठमाण्डू में रहते हैं।

किराती लोग बड़े विख्यात शिकारी होते हैं। कद में ये लोग बड़े छोटे होते हैं। इनके चेहरे बड़े चपटे होते हैं।

धुंसे ग्राम के निवासी भूटिया

भोटिया लोग अधिकांश में पहाड़ियों पर रहते हैं। ये लोग बड़े मिहनती और वीर होते हैं। उनकी आकृति सुन्दर नहीं होती। उनसे अधिकतर पहाड़ों पर बोझा ढोने का काम लिया जाता है और उस काम के लिये वह बहुत मजबूत हैं। दो मन का बोझा

धुंसे ग्राम से बरफ ढके हुए पहाड़ों का दृश्य

पहाड़ियों के ऊपर ले जाना उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं। भोटिया लोग हिन्दुस्तान के पल्लेदारों की तरह बोझ को पीठ पर रख कर बड़ी सरलता के साथ पहाड़ के पथरीले मार्गों में चले जाते हैं।

नेवार लोग अधिकांश में घाटियों में रहते हैं। वे नैपाल के गोरखा लोगों से प्राचीन निवासी हैं। पाटन और भटगाँव में यह लोग अधिकांश में रहते हैं। गोरखों से ये लोग क़द में छोटे होते हैं। देश का सारा कृषि-कार्य यही लोग करते हैं। इनमें से बहुत से निपुण शिल्पकार हैं। नैपाल का वाणिज्य कार्य भी इन्हीं के हाथों में है। ये लोग बड़े धनी हैं। गज के घेर वाले होते हैं। लंहगे सामने तो पृथ्वी तक लटकते हैं किन्तु पीछे वे मुशकिल से घुटने तक पहुँचते हैं। ऐसा लंहगा पहिन कर वे बहुत दूर नहीं चल सकतीं। कमर में वे एक बड़ा कसा हुआ कमरबन्द पहिनती हैं। नैपाल की स्त्रियाँ गहना पहिनना बहुत पसन्द करती हैं। उनके गहने भारतवर्ष की स्त्रियों से बहुत मिलते जुलते हैं। किन्तु बाजे बाजे गहने बड़े ही अनोखे होते हैं। नैपाल निवासी स्त्री या पुरुष पुष्पों के बड़े प्रेमी होते हैं। फूलों के गहने वे लोग हमेशा पहिने रहते हैं।

नैपाल के ब्राह्मण लोग भारतवासी ब्राह्मणों की तरह बड़ा सरल भोजन करते हैं। किन्तु अधिकांश में नैपाली लोग बड़े मांसप्रिय हैं। गोरखा लोग खसी (बकरा) के मांस को बहुत रुचि के साथ खाते हैं। सूबरों के पालने में ये लोग बड़े निपुण हैं। नेवार लोग भैंसे और चिड़ियाँ बहुत खाते हैं। ग़रीब किसानों को मांस अधिक नहीं मिलता। वे लोग रक्शी (एक क़िस्म की शराब) बहुत पीते हैं, किन्तु बड़े आदमी इसको नहीं छूते। नैपालनिवासी इसको अपने घर में तैयार कर लेते हैं। इस पर कोई कर नहीं पड़ता, किन्तु यदि इसे बाज़ार में बेचने की
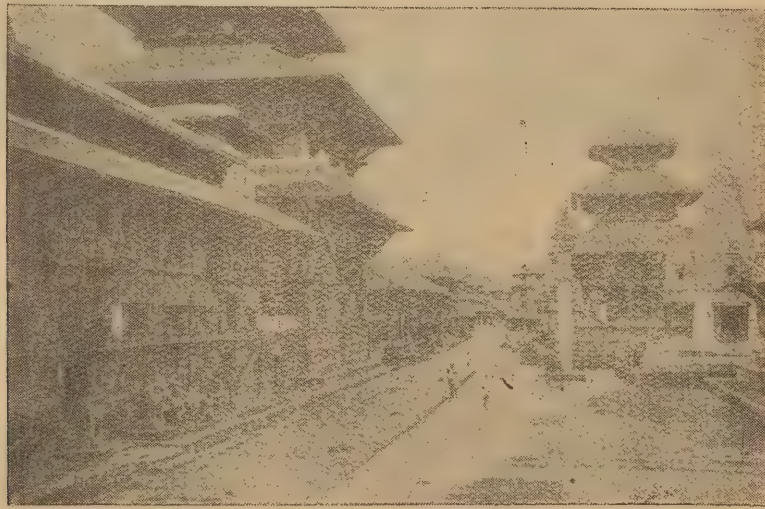
पाटन नगर का एक दृश्य

काठमान्डू में थोड़े से काशमीरी और इराकी मुसलमान व्यापारी भी रहते है। गोरखा लोगों की भाषा परबतिया है। यह भाषा संस्कृत से मिलती जुलती है। भिन्न भिन्न जातियों की भिन्न भिन्न भाषा है। भूटिया लोग तिब्बत की भाषा बोलते हैं। गोरखा लोग सब से अच्छे कपड़े पहिनते हैं। वे लोग हमेशा एक कुकरी बाँधते हैं। जाड़े के दिनों में वे लोग रुईदार कपड़े पहिनते हैं। वे अकसर ढीली ढाली पगड़ी बाँधते हैं। सब जाति की स्त्रियाँ क़रीब क़रीब एक से ही कपड़े पहिनती हैं। उनके लहँगे ६० से ८०

आवश्यकता पड़ती है तो बेचनेवाले को लाईसेन्स लेना पड़ता है। शराब के व्यापार से नैपाल में कुछ फ़ायदा नहीं है।

स्कूल और कालिजों के विषय में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। नैपाल के धनी लोग अपने बालकों को अंगरेजी पढ़ाने के लिये यूरोपियन
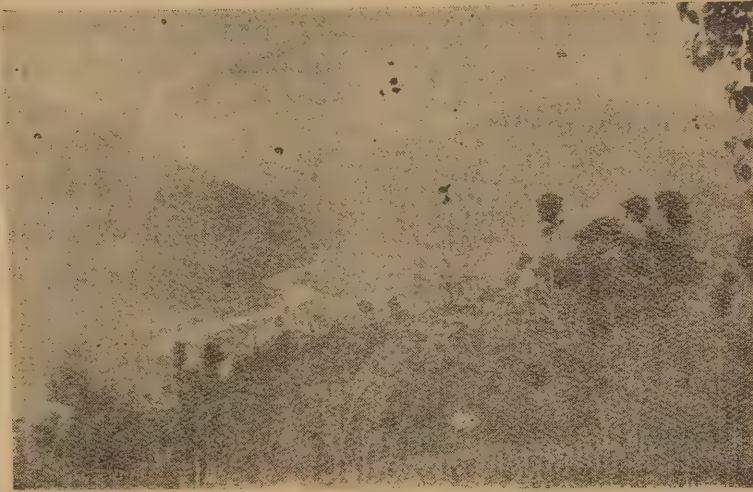
त्रिशूली नदी का दृश्य

धनी और ग़रीब दोनों ही चाय पीना बहुत पसंद करते हैं। नैपाली लोग अंगरेजी चाय नहीं पसंद करते उनकी चाय तिब्बत से आती है।

या बंगाली बाबू रखते हैं किन्तु सरकार ने शिक्षा के लिये अभीतक विशेष ध्यान नहीं दिया है। अधिकतर प्रत्येक व्यक्ति अपने लड़कों को स्वयम पढ़ाता
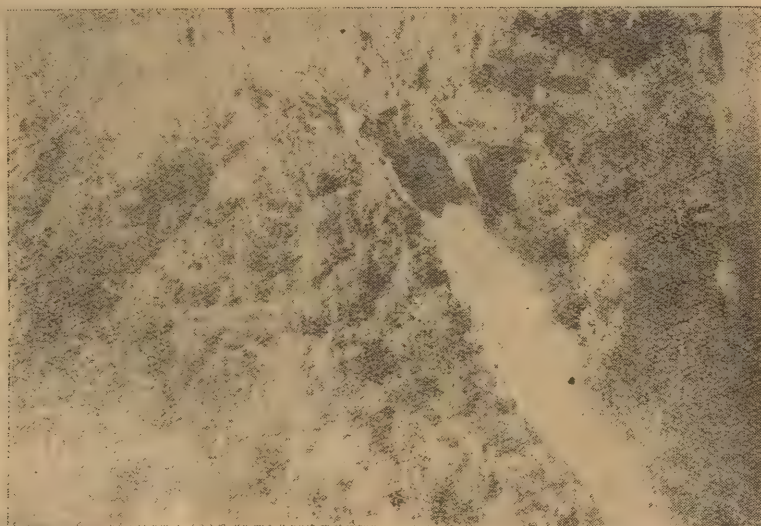
धुंसे ग्राम में भूटिया गण्डक (मोटी धारा) और त्रिशूली गण्डक (पतली) का संगम

है या अपने पुरोहित को पढ़ाने के लिये नौकर रख लेता है। नीच जाति वालों को किसी प्रकार की भी शिक्षा पाने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। नैपाल के शिक्षा विभाग की दशा बड़ी ही शोचनीय है। काठमाण्डू में "चन्द्र" कालेज सब से प्रसिद्ध कालेज है।

भारत वर्ष की तरह नैपाल में भी कई मत वाले पुरुष रहते हैं। इन लोगों में भी अनेक मत मतान्तर हैं। एक मनुष्य को अधिकार है कि वह कई स्त्रियाँ रख सके और धनी होने से बचा सकती है। यह प्रथा अब बहुत कुछ बन्द सी होगई है। यदि किसी गोरखा की स्त्री कोई कुकर्म करते पाई जाती है तो उसके पति को अधिकार है कि वह उसे जन्म भर के लिये कारागार में रखवा दे। और पति को यह भी अधिकार है कि वह अपनी स्त्री के बिगाड़ने वाले मनुष्य को खुखरी से मार डाले, सरजंग बहादुर ने इस नियम में भी यथाशक्ति सुधार किया है। अब अपराधी का अपराध पहिले न्यायालयों से साबित करा लिया जाता है तब पति को आज्ञा दीजाती है कि

चन्द्र कालेज काठमाण्डू के प्रधान अध्यापक और उनके साथ अन्य अध्यापकगण

आदमी के बहुधा बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं। विधवा विवाह की आज्ञा नैपाल सामाजिक स्थिति के अनुसार नहीं है। स्त्रियों का अपने पति के साथ सती होना अभी तक बड़ी धूमधाम से जारी है। सर जंग बहादुर ने इस प्रथा को रोकने की कोशिश की थी। जिन विधवाओं के छोटे लड़के होते हैं उनको सती होने की आज्ञा नहीं है। हां स्त्रियां सती होने के लिये बाध्य नहीं की जातीं यदि कोई स्त्री चाहे तो वह जलती हुई अग्नि के समक्ष भी अपना विचार बदल सकती है तथा अपने को सती

वह उसको सबके समक्ष में मार डाले। इसमें भी अपराधी को कुछ गज का फासला दिया जाता है। ताकि वह भाग कर अपनी जान बचा सके। किन्तु तौ भी अपराधी को बचने का बहुत कम अवकाश मिलता है। अपराधी को आज्ञा दी जाती है कि यदि वह अपने विपक्षी के चरणों के नीचे से निकलना स्वीकार करे तो उसकी जान बच जाय किन्तु ऐसा करने में अपराधी की सामाजिक स्थिति में बड़ा अन्तर आ जाता है। अत: अपराधी अधिकतर ऐसी शर्त स्वीकार करने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा

समझता है। स्त्री को भी अधिकार है कि वह अपराधी की जान बचा ले किन्तु उसे कहना पड़ता है कि उक्त अपराधी के अतिरिक्त उसके और भी कई मित्र हैं। नैपाल में इस प्रकार की प्रेम सम्बन्धी हत्यायें बहुत होती हैं, और इसमें बड़े बड़े खानदान के नवयुवक फँस कर अपने प्राण गवाँ देते हैं। अपने वर्ण के नियमों के विपरीत आचरण करने वालों को प्राचीन नियमानुसार बड़ा कठिन दण्ड मिलता था।

नैपालियों में शिक्षा की त्रुटि होने के कारण अभी प्राचीन कुप्रथायें बहुत प्रचलित हैं। भवानी की पूजा के लिये उनको भैंसे, बकरे, मुर्गे इत्यादि की भेंट देना पड़ती है। इन जानवरों को मार कर इनके लोहू से देवी जी का मन्दिर सींचा जाता है और इन जानवरों के मांस को पुजारी लोग बड़ी रुचि के साथ खाते हैं। इस मांस का प्रसाद भेंट देने वालों को भी मिलता है। सर जङ्गबहादुर ने इस निर्दयता के व्यवहार में भी बड़ा सुधार किया है।

गोरखाओं की तरह नेवारों में विवाह के नियम इतने कठिन नहीं। प्रत्येक नेवार कन्या का विवाह छोटेपन ही में एक बेल के फल के साथ कर दिया जाता है। विवाह के पश्चात वह बेल किसी नदी में फेंक दिया जाता है। जब वह कन्या बड़ी होती है तब उसके लिये पति ढूँढ़ा जाता है। यदि वह कन्या अपने पति से अप्रसन्न रहे तो उसको आज्ञा है कि वह अपने पति के तकिये के नीचे एक सुपारी रख कर जहाँ चाहे चली जाय। इससे पति को सूचना हो जाती है कि उसकी स्त्री से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इन लोगों में विधवा विवाह की आवश्यकता ही नहीं पड़ती क्योंकि जिस बेल के फल के साथ उसका पाणिग्रहण किया जाता है उसका कभी नाश नहीं होता। नेवारों में व्यभिचार करने वालों को कोई कठिन दण्ड नहीं दिया जाता है। व्यभिचारिणी स्त्री अपने अभीष्ट जन के साथ यथेष्ट रमण कर सकती है। किंतु उस मनुष्य को उस स्त्री के पति को विवाह का खर्चा देना पड़ता है। यदि वह इसमें असमर्थ है तो उसको उस स्त्री का पति कारागार में रखवा सकता है। नेवार लोग अपने मुर्दों को जलाते हैं और उनकी स्त्रियाँ अगर चाहे तो पति के साथ सती हो सकती हैं। किन्तु अब ऐसा बहुत कम होता है।

गोसाईं कुण्ड का दूसरा दृश्य

भारतवर्ष की तरह नैपाल में भी किसी मृत

मनुष्य के धन का सब से बड़ा भाग बड़े लड़के को मिलता है छोटे लड़कों और विधवाओं को भी कुछ भाग दिया जाता है।

नैपाल में चार मुख्य संवत हैं (१)बिक्रमादित्य संबत्

(२) साका शालिवाहन (३) नैपाली सम्बत जो ८८० ईसवी से है। (४) कालीगांव संबत्। यह सम्बत सबसे प्राचीन है। नैपाल के इतिहासोंमें इसका प्रयोग कहीं कहीं किया गया है। इसका आरम्भ ईसा से ३१०१ वर्ष पहिले से है।

ताता पानी शावरू ग्राम के पास इसमें ८०० सेंटिग्रेड की गर्माहट थी

नैपाल में संबत और साका दोनों का आरम्भ बैसाख बदी प्रतिपदा से होता है।

त्योहार

नैपाल में त्योहार बहुत ज्यादा हैं। प्रति दिन कोई न कोई त्योहार बना ही रहता है। नैपाल के इतिहासों में इन त्योहारों के विषय में बहुत विस्तार पूर्वक लिखा है। पाठकों के विनोदार्थ उनमें से कुछ हम यहाँ पर लिखते हैं—

(१) मच्छिन्द्र यात्रा : मच्छिन्द्रनाथ नेपाल के पूज्य देवता हैं इनकी प्रतिमा भोगमती नामक गांव में है। बैसाख की प्रतिपदा को इनकी पूजा का आरम्भ होता है। मूर्त्ति को गंगा जल से स्नान करा कर इसके सामने राजा की तलवार रक्खी जाती है। इस गाँव से इनकी सवारी बड़े धूमधाम से निकलती है। और कई बड़े बड़े ग्रामों में एक आध दिन विश्राम करके पाटन में लगभग १५ दिन के बाद
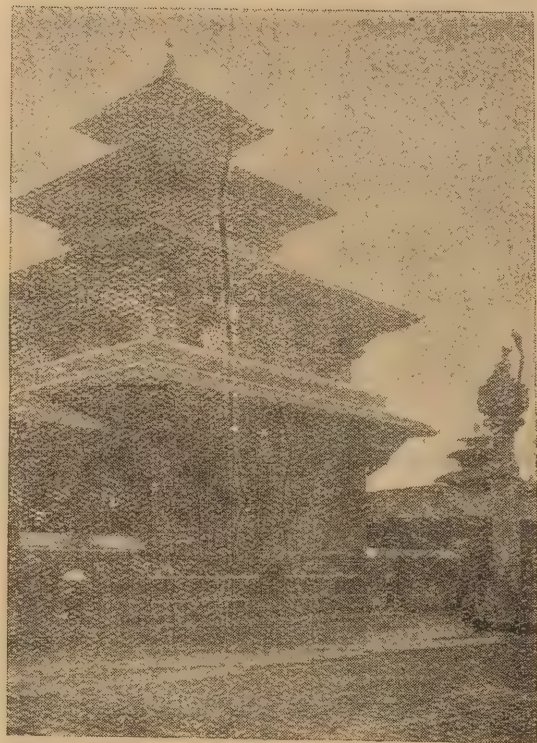
पाटन के एक मंदिर ग्रर उसके सामने राजा "मल्ल ?" की मूर्ति का दृश्य

पहुंचती है। कछ दिनोंके पश्चात् मूर्ति बड़े समारोह के साथ भोगमती में फिर वापस लाई जाती है। पाटन से जाते समय मच्छिन्द्रनाथ जी का कम्मल सब के सामने झाड़ा जाता है। इस दिन को नैपाली लोग "गुदड़ी झाड़" कहते हैं। यह मेला लगभग दो सप्ताह के होता है।

(२) बाजरा जोगिनी यात्रा। यह मेला वैसाख बदी तृतीया को होता है। जोगिनी जी की मूर्ति

साखू के निकट है। यह मेला लगभग एक सप्ताह के रहता है। भगवती जी की मूर्ति एक खाट पर स्थापित की जाती है तथा मनुष्यों के कंधों पर रख कर सारे नगर में घुमाई जाती है।

(३) सीढ़ी यात्रा। यह मेला जेठ सुदी ६ को बसुमती के किनारे होता है। एक बड़े भोज्य के पश्चात एकत्रित हुई जनता दो भागों में बँट कर ईंटें फेंककर मारपीट करते हैं। प्राचीन समय में यह मेला एक बड़ा भयानक रूप धारण कर लेता था। यदि कोई विपक्षी दल का मनुष्य पत्थरों से मारा जाता था अथवा अपने शत्रुओं के हाथ में पड़ जाता था तो उसको वे लोग कंकेश्वरी देवी के निकटस्थ मन्दिर में भेंट देदेते थे। आज कल पत्थर फेंकने का खेल केवल लड़के ही करते हैं।

(४) घन्टाकरन। यह त्योहार १४ श्रावण को होता है। इस तिथि को घन्टाकरन नामक राक्षस नैपाल से निकाला गया था। नैपाली बालक राक्षसी तसबीर बना कर सड़कों में घसीटते हैं और सब लोगों से पैसा माँगते हैं। शाम को अपने २ खिलौने यह लोग जला देते हैं। इनके अलावा और भी कई प्रकार के त्यौहार मनाए जाते हैं। राखी पूर्णिमा नाग पञ्चमी, दशहरा, दिवाली आदि त्यौहार नैपाल में भी उसी तरह मनाए जाते हैं जैसे भारतवर्ष में।

पाटन में श्री विष्णु ! जी का मंदिर और गरुड़ की मूर्ति

जाल-छिद्र

(१)

बन्दी

वे मुझे नहीं जानते, जिन्होंने मुझे बन्दी बना रखा है। इस झरने को बान्धने वाले नहीं जानते कि यह प्रतिक्षण उड़ा जा रहा है। मैं एक ओसकण हूँ: वे मुझे अदृश्य होते देख आश्चर्य करेंगे, प्रतिपल समय सरिता की लहर पर तैरने वाले मुझको कौन कैद कर सकता है?

मुझे दण्ड देने वाले कारागार के कपाट तोड़ रहे हैं; और मुझे बाँधने वाले श्रंखला को काट रहे हैं। वे मेरा बड़ा उपकार करते हैं, मैं सब जानता हूँ; मुझे कुछ भय नहीं। आकाश में इन्द्र धनुष विलीन हो रहा है; और फूल झड़ कर मिट्टी में मिल रहे है। उन्होंने अन्धकार को अपने हृदय में बन्द कर रखा हैं, परन्तु अन्धकार समस्त संसार में व्याप्त है।

आकाश को भी भला कोई मुट्ठी में पकड़ सकता है? मुझे उनके अज्ञान पर हँसी आती है, क्योंकि वे मुझे मुक्त करते है, जिन्होंने मुझे बन्द बना रखा है।

—श्री कुँवर रामसिंह 'विशारद'

(२)

तीर्थस्थल।

मेरी यात्रा में ऐसे ऐसे कई विश्राम स्थल हैं जहाँ पहुंचने पर मुझे अत्यन्त शान्ति मिलती है।

वहां की भूमि मुझे ग्रीष्म में मरुस्थल के बालुका प्रदेश की तरह तप्त प्रतीत होती है; वहाँ के प्रासाद मुझे तप्त सुवर्ण की तरह तपाते हैं।

पास ही, एक वृक्ष के नीचे धूनी तापने वाला साधु, यात्रियों को उपदेश देते हुए, सदा कहता है,—"वह यहीं रहता है।"

इस संतप्त स्थल को वे तीर्थस्थल कहते हैं—जाने क्यों? ग्रीष्म की तपन में कभी कभी मुझ पर अचेतनता का पर्दा गिरता है, तब मैं साधु के उपदेशों पर मनन करता हूं और स्वप्न-स्मृति की तरह एक शीतल लहर मेरे मस्तिष्क से निकल जाती है।

तब से मुझे अपनी जीवन यात्रा के इन तीर्थ स्थानों पर श्रद्धा हो गई है। मैं बड़ी आकांक्षा के साथ उनकी प्रतीक्षा करता रहता हूं, क्योंकि—

—वह यहीं रहता है।

—सूर्यकरण पारीक "विशारद"

विपरीत चिकित्सा का विपरीत परिणाम

लेखक इकबाल वर्मा 'सेहर'

प्रकृति के विपाक विधान की अनिवार्यता को निश्चित मानते हुए भी हमको उसकी दयार्द्रता का कायल होना ही पड़ता है। वह यथाशक्ति प्राणिमात्र को स्वस्थ रखना चाहती है और इस हेतु उसने जगत में जीवनोपयोगी सामग्रियां पार्याप्त परिमाण में उपस्थित कर रक्खी हैं। फिर प्रकृति की स्वास्थ्य बर्द्धिनी शक्तियों का कार्य केवल उनके वाह्यस्वरूप तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत प्रत्येक शरीर में आभ्यान्तरिक रीति पर भी नित्यशः जारी रहता है। इसके साथ ही प्राणियों की प्रकृति की ओर से स्वाभाविक प्रेरणाओं के रूप में ऐसी सूचनाएं भी मिलती रहती हैं जिन पर कार्यबद्ध होकर उसके स्वास्थ्य विषयक सद्प्रयत्नों में योग दिया जा सकता है। अर्वाचीन काल में प्रकृति की सदिच्छाओं के परिणाम का साक्ष्य (मनुष्यों से इतर) भोग योनिवाली सृष्टि में अधिकतर पूर्णता के साथ मिलता है, क्योंकि ऐसी सृष्टि अपनी नैसर्गिक पराधीनता के कारण प्रायः प्राकृतिक नियमों के अधीनस्थ ही रहती है। अस्तु। मनुष्य उभय योनि वाला प्राणी है और मानव जन्म की उपलब्धि प्रकृति की विशेष दयालुता (अथवा कार्य्य कुशलता) की ही द्योतक है। मनुष्य को यह क्षमता दी गई है कि वह कर्मजन्य भोग को पूरा करते हुए क्रियमाण कर्मों द्वारा अपने को उन्नत भी बना सके। तात्पर्य यह है कि प्रकृति मनुष्य प्राणी को स्वस्थ रखना चाहती है; हाँ यह अवश्य है कि बौद्धिक स्वच्छन्दता अथवा निरंकुशता के कारण मनुष्य स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की अवहेलना करता रहता है।

मनुष्य ऐसी अवहेलना करता है; प्रकृति की मूक आज्ञाओं को सुनी अनसुनी करते करते वह शनैः शनैः वैसा ही करने का इतना अभ्यस्त होगया है कि, सम्प्रति उपर्युक्त अवहेलना अधिकतर अनजान में ही की जारही है। अतः जो काम प्रकृति तथा मनुष्य के पारस्परिक साहचर्य्य द्वारा ही सुचारु रूप से चल सक्ता है उसमें मनुष्य ने अपनी स्वेच्छाचारिता के

प्रयोग से विघ्न डाल दिया है। यद्यपि प्रकृति की ओर से उसके स्वास्थ्यप्रद कर्तव्यों का पालन नियमित रूप से सतत होता ही रहता है तो भी मनुष्य की असहयोगमयी उदासीनता ऐसे सद्प्रयत्नों से होने वाले फलों में बहुत कुछ दोष उत्पन्न किए बिना नहीं रहती। परिणाम स्वरूप शरीर में रोगों का सञ्चार होने लगता है और मनुष्य स्वास्थ्य के सदृश अमूल्य पदार्थ से हाथ धो बैठता है। अब यह बात स्वाभाविक है कि पुरुष और स्त्री दोनों के रुग्ण होने पर, इनके संयोग से उत्पन्न होने वाली संतति कुछ अधिक मात्रा में ही रोग ग्रस्त होगी। फिर यदि इसी क्रम का अबाध रीति पर जारी रहना कल्पित कर लिया जाय तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मनुष्यों के लिए उस लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति की उपलब्धि दिनों दिन अधिकाधिक ही दुस्तर होती जायगी, जिसका मिलना शरीरान्तर्गत अवयवों की स्वस्थता पर बहुत कुछ निर्भर है। यही अवयव के कारण हैं जिनके द्वारा जीवात्मा कार्य्य सम्पादन के निमित्त समर्थ होता है।

आधुनिक जगत में कुछ इसी प्रकार का दृश्य दिखाई पड़ रहा है। अर्थात् मनुष्यों का अपनी स्वास्थ्य सम्बन्धी नीति की उपेक्षा द्वारा अवनति की ओर ही अग्रसर होना विदित होता है। यह बात कुछ सन्तोषजनक है कि सम्प्रति कुछ अनुभवी विज्ञानवेत्ताओं ने भी मानवी पतन का मूल कारण अस्वस्थता को ही क़रार दिया है और इसी को प्रत्येक पाप का मुख्य हेतु माना है। अस्तु। इस नैतिक अधःपतन के अतिरिक्त उन अनेक शारीरिक कष्टों का भी ध्यान में रखना आवश्यक है जिनका अस्वस्थता जन्य विकारों के साथ एक प्रकार का समवाय सम्बन्ध है, फिर चाहे ऐसे कष्टों की मात्रा में कमोवेशी भले ही हुआ करे। अतः इस समय यदि आध्यात्मिकता के विचार से नहीं तो कम से कम लौकिक हितचिन्तना की दृष्टि से ही कतिपय परोपकारी मनुष्यों ने स्वास्थ्य सुधार के निमित्त विविध प्रयत्नों की खोज की है तथा उन्होंने इस खोज में जिस सम्पूर्ण सूक्ष्मता के साथ अनुसंधान किया है वही उक्त महानुभावों की हृदयस्थ सदाशयिता का प्रमाण है। परिणाम स्वरूप वे औषधियां तथा शल्यक्रिया सम्बन्धी रीतियां हैं जिनके व्यवहार की विस्तीर्णता पर आधुनिक सभ्य जगत विस्मित हो रहा है। यह विस्मय कुछ अधिक बढ़ जाता है जब यह बात देखी जाती है कि चिकित्सा सम्बन्धी असंख्य व्ययसाध्य आडम्बरों के होते हुए भी रोगों की भीषणता घटने की जगह निरन्तर बढ़ रही है और मानव समाज अधिकाधिक पतनोन्मुख होता जा रहा है। यह एक ऐसी प्रत्यक्ष बात है जिससे चिकित्सा विषयक प्रचलित उपचारों की निरर्थकता स्वतः सिद्ध होजाती है। अस्वाभाविक प्रयत्नों का फल आशाप्रद हो भी नहीं सकता। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि अप्राकृतिक रहन-सहन की दीर्घकालीन मानवी बुद्धि को विकृत किए बिना नहीं रह सकती तब हमको उपर्युक्त अप्राकृतिक उपचारों के आविष्कर्ताओं पर दया ही आती है। औषध और रोग के पारस्परिक सम्बन्ध की सूक्ष्मता अत्यन्त महान है तथा शताब्दियों की प्रकृति विरुद्ध जीवन चर्या ने मानवी शरीरों में अत्यधिक जटिलताएं उत्पन्न कर दी हैं, जिनका गहन प्रभाव रोगों पर पड़ता ही है। अतः निदान और तत्सम्बन्धी औषध की निमित्त से पर्य्याप्त मननशक्ति न रखते हुए, आधुनिक चिकित्सक वर्ग की यह केवल मूर्खता ही है कि वह सम्प्रति किसी भी रोग के लिए किसी ऐसी औषध को प्रयुक्त करे जो रोग की सरलता की दृष्टि से उसके लिए शताब्दियों पूर्व निश्चित की जा चुकी है। सामयिक परिस्थितियों की दृष्टि से ऐसा प्रयोग नितान्त अप्राकृतिक ही होगा। इन बातों को ध्यान में रखते हुए प्रो० जेमसन का यह कथन कितना सत्य प्रतीत होता है कि "आज कल विज्ञान के नाम पर चिकित्सा करने वाले प्रकृति और रोगी की वास्तविक चिकित्सा प्रणाली से एकदम अनभिज्ञ होते हैं। इसमें नौ दवाइयां बहुत हानि कारक हैं। परिणाम स्वरूप डा० सर जान गुड के शब्दों में यह

निश्चय पूर्वक कहा जा सक्ता है कि हमारी दवाइयों का प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है।"

यहां यह शंका की जा सक्ती है कि औषधियों के प्रयोग को अनिश्चित मानते हुए भी कतिपय रोगियों को दशा में इस प्रयोग का शमनकारी प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। निस्सन्देह यह सम्भव है कि भाग्यवश अब भी कहीं विशेष दशाओं में रोग और उसके निमित्त प्रयुक्त की जाने वाली औषध में ऐसा सामञ्जस्य उपस्थित हो जावे तो स्वास्थ्य-सुधार में सहायक हो परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि केवल भाग्य के आश्रित हो कर उपर्युक्त सामञ्जस्य को प्रत्येक दशा में अनुमानित कर लेना भ्रम ही है;× अतः डाक्टर कूपर का यह कहना ठीक ही जँचता है कि 'औषधियों पर जिसका जितना विश्वास हो उतनाही उसको अज्ञानी समझना चाहिए। फिर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आरोग्य लाभ के लिए स्वयं प्रकृति सदैव ही कार्य्यरत रहती है; और आज कल जहां वह औषधियों से अपने काम में सिर्फ कभी कभी साहाय प्राप्त कर सकती है वहीं वह बहुधा औषधजन्य अनिष्ट को मिटाकर ही सफल उपज होने की चेष्ठा करती रहती है। इसका प्रमाण मानवी स्वाध्य का आधुनिक ह्रास तथा औषधियों और रोगों की सापेक्षिक वृद्धि है;** क्योंकि प्रकृति के उसी प्रयास का नाम रोग है जिसके द्वारा वह स्वास्थ्य नाशक पदार्थों को शरीर से प्रथक करना चाहती है। रोगों की वृद्धि का कारण मनुष्यों का अप्राकृतिक रहन-सहन भी है फिर भी यदि औषधजन्य प्रभावों को निश्चित मान लिया जाय तो उपर्युक्त वृद्धि के स्थान में न्यूनताही होनी चाहिए थी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए जब हम समस्त रूप से बिचार करते हैं तो औषधियों की रोग निवारण विषयक पूर्वकथित सम्भावना को स्वीकार करते हुए भी हमको प्रो० फार्सन के शब्दों में प्रायः यही कहना पड़ता है कि "हम नहीं जानते कि रोगी औषधियों से अच्छे होते है या प्रकृति से; सम्भवतः उन्हें रोटी-रूपी गोलियां ही अच्छा करती हैं।" प्रो० स्मिथर तो यहां तक कहते हैं कि "औषध से कभी रोगी अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वयं प्रकृति अच्छा करती है"; और औषध विषयक उपर्युक्त सम्भावना की निश्चय हीन स्थिति को पूर्णतः ख्याल में रखने पर हमको इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं दीखती।

औषध प्रयोग द्वारा रोगों से निवृत्ति पाने के विषय में एक बात और उल्लेखनीय है। बहुधा हम जिसको रोग का आराम होना समझते हैं वह वस्तुतः आधुनिक चिकित्सा के प्रभाव से रोग का केवल दब जाना ही हुआ करता है। परन्तु प्रकृति का स्वास्थ्य कारक कार्य तो यथाशक्ति कभी बन्द हो नहीं सक्ता। अतः इस कृत्रिम आरोग्यकरण का परिणाम यह होता है कि या तो वही रोग बारम्बार प्रगट होते हुए स्थायी (Chronic) बन जाता है अथवा रोग तथा तत्सम्बन्धी औषधियों के योग से शरीरस्थ बिकारों में आधिक्य हो जाने के कारण कितने ही नये रोगों का प्रादुर्भाव होता है जो पहले रोग की अपेक्षा स्वाभाविकतया अधिक कष्टप्रद तथा दुःसाध्य होते हैं। डा० रश कहते हैं 'चिकित्सकों ने रोगों की संख्या और उनकी भयङ्करता बढ़ाई है।'' साम्प्रति इस

×(१) डा० राबिन्सन कहते हैं आजकल व्यवहार में औषध के गुण विज्ञान प्रारब्ध और भ्रम के बिलक्षण मिश्रण पर अवलम्बित है।

(२) डबलिन मेडिकल जर्नल में एक लेखक ने लिखा था आजकल का चिकित्सा विज्ञान नाम को भी बिज्ञान नहीं;वह तो अटकलपच्चू सिद्धान्तों,भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और अस्थिर सम्मतियों का खज़ाना है।

(३) प्रो० माह ने एक बार कहा था,समस्त विज्ञानों में औषध विज्ञान सब से अधिक अनिश्चित हैं।

(४) डा० इवान्स के मतानुसार इस उन्नत काल में भी औषधियों के गुण निश्चित और संतोष प्रद नहीं है।

(५) डा० भरोथ की सम्मति में वैद्यक की अपेक्षा अधिक अप्रमाणिक धाँधा भाग्य ही से कोई देख पड़ेगा।

(६) प्रसिद्ध डा० सर आस्टली ने एक समय बिगड़ कर कहा था वैद्यक शास्त्र केवल अटकलपच्चू रचा गया है।

(७) डा० मेजेन्दी की समझ में वैद्यक महा पाखण्ड है।

**डा० अबरन समझते हैं कि औषधियों की संख्या बढ़ने के साथ रोगों की संख्या भी उसी मान से बढ़ती जाती है।

दुष्परिणाम का स्पष्टीकरण निरन्तरही हो रहा है जिससे आधुनिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा रोगों के दबा दिये जाने के ही विषय में हमारे उक्त कथन की पूर्णतः पुष्टि होती है। "Water-cure for the millions" नामी पुस्तक के रचयिता अमेरिका निवासी सुविख्यात डा॰ ट्राल (Dr. Trall) का भी कथन है कि "औषधियों से और नये रोग उत्पन्न होते हैं; एक रोग के दबने से अनेक नये रोग पैदा हो जाते हैं। फिर औषधियाँ अपने वास्तविक रूप से हटकर जितनी ही सूक्ष्म तथा तरल होंगी उतनी तीव्र होने के कारण ये रोगों को उक्त प्रकार दबा देने के लिए अधिक बलवती सिद्ध होंगी। कारण कि वे अपनी विषरूपी तीक्ष्णता के प्रभाव से उन अवयवों को शीघ्रता पूर्वक निश्चेष्ट तथा निष्क्रिय बना देती हैं जिनके द्वारा प्रकृति शरीरस्थ मल को रोग की शकल में खारिज करना चाहती है। फलतः औषधियां साधारणतः और युरोपीय चिकित्साविधि के अनुसार तय्यार की गई तेज औषधियां विशेषतः, मानव-स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। डा॰ ट्राल की सम्मति है कि "सब प्रकार की औषधियां अर्थात खनिज, पशुजन्य और बनस्पति जन्य विष के सिवा और कुछ नहीं"। जब हम यह देखते हैं कि प्रचलित औषधियों के अन्धाधुन्ध प्रयोग ने प्रकृति के रोग नाशक प्रयत्नों में शैथिल्य उत्पन्न करके मानव जाति का कितना घोर अहित किया है× तो हम को ट्राल महोदय से विवशतः सहमत होना पड़ता है तथा औषध सेवन की ओर से हमारा रहा-सहा विश्वास भी जाता रहता है।

हम यह दिखला चुके कि औषधियां अपने विषम प्रभाव द्वारा शरीरस्थ अवयवों को सामान्यतः निस्तब्ध बनाते हुए अतः रोगजन्य यातनाओं में आपेक्षिक न्यूनता लाते हुए, आरोग्य प्रदान के खयाल से मनुष्यों को किस प्रकार सहज ही धोखा दे सक्ती है। ऐसा धोखा अन्य रीति पर भी होता है। अक्सर तेज दावाएँ अपने उत्तेजक प्रभाव द्वारा रोगी में एक प्रकार की उत्तेजना पैदा कर देती हैं अथवा यह कहना उचित होगा कि वैसी दशा में प्रकृति के अधिक सशक्त होने पर उसके उन सद्प्रयत्नों में कुछ-न-कुछ वेग अवश्य ही आ जाता है जिनके द्वारा वह औषध जन्य विष को शरीर से विलग कर देने का प्रयास करती है। यदि उक्त प्रयत्नों ने असाधारण उग्रता प्रदर्शित की तो रोगी की दशा दमनीय ही हो जाती है; अन्यथा साधारण स्थिति के होते हुए रोगग्रस्त, शरीर में किञ्चित चेतनता का सञ्चार होता हुआ दीखता है। यद्यपि रोग की पूर्वोल्लिखित परिभाषा को ध्यान में रखते हुए हम इस स्थिति को वस्तुतः रोग की वृद्धि ही कह सक्ते हैं फिर भी उपर्युक्त चेतनता के आभास के कारण अनभिज्ञ हृदयों में प्रायः रोगी के स्वस्थतर होने का भ्रम उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। प्रकृति के इस असाधारण प्रयास का स्वाभाविक परिणाम भी वही शैथिल्य पूर्ण निस्तब्धता है जिसका हम अभी जिक्र कर चुके हैं और जिससे (रोग-संवरण द्वारा) रोगी की दशा में अधिक से अधिक अस्थायी सुधार की ही आशा की जा सकती है। परन्तु शरीर के समस्त अवयव नैसर्गिक रीति पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। अतः उक्त निश्चेष्टता अवयव विशेष तक ही सीमित न होकर समूचे शरीर को प्रभावित करती है। स्पष्ट शब्दों में औषध सेवन द्वारा केवल रोग-विशेष अधिक दुःसाध्य ही नहीं हो जाता प्रत्युत रुग्ण शरीर रुग्णतर हो जाता है। अतः प्रसिद्ध अङ्गरेज डा॰ ओसलर (जो औषध-शास्त्र के सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं) का यह कथन तथ्यहीन नहीं जान पड़ता कि "औषधियों का उन रोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिनके लिए वे व्यवहृत की जाती हैं। और वही सबसे अच्छा चिकित्सक है जो

× प्रो॰ क्लार्क—चिकित्सकों ने हजारों ऐसे रोगियों के प्राण लिए हैं जो केवल प्रकृति पर छोड़ दिये जाने से अवश्य नीरोग होजाते। औषध वास्तव में विष है और हर मात्रा से रोगी का बल घटता है।

(२) डा॰ सेंडलर—औषध से शारीरिक शक्ति का नाश होता है।

(३) डा॰ वोस्टाक—दवा की हर मात्रा रोगी की सञ्जीवनी शक्ति पर एक अंध प्रयोग और अनुभव मात्र हैं।

दवाओं को निरर्थक समझता है। डा० पौट्रिक के शब्दों में "अनुभव से दिन दिन औषधियों की निरर्थकता ही सिद्ध होती है; ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं त्यों त्यों वे जानते जाते हैं कि उन पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।" तभी तो अमेरिका निवासी डा० होम्स हताश होकर कहते हैं कि "सब औषधियां समुद्र में फेंक दी जातीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता। डा० फ्रांक कहते हैं सरकार को चाहिए कि इन डाक्टरों को न रहने दें और उनकी नष्ट चिकित्सा प्रणाली रोक दें।

मनुष्य ने विशेष खान-पान में भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करते हुए अपने आप को रुग्ण बना लिया है; फिर उसने नीरोग होने के निमित्त भी ऐसीही वस्तुओं का सेवन प्रारम्भ किया जिनका अभक्ष्य कहा जाना ही उचित है। यह नितान्त निश्चित है कि यदि उक्त दशा में मनुष्य अपने आपको प्रकृति के ही आश्रित रखना अलम् समझता तो इस प्रकार शरीर में दूषित पदार्थ का भार न्यून और कदाचित वहन योग्य होता। डा० रैमजे ने कहा है कि बिना चिकित्सा रोगी की दशा अपेक्षाकृत अच्छी रहती है। आजकल की औषध चिकित्सा बड़े बड़े प्रोफेसरों के लिए लज्जास्पद होनी चाहिए। परन्तु आजकल की विपरीत चिकित्सा-प्रणाली के सार्वभौमिक प्रचार ने तो न जाने कितने मनुष्यों को घुला घुला कर उन्हें अन्ततः मृत्यु के घाट उतार दिया और न जाने कितनों को मृतप्राय बना रक्खा है; फिर साधारणतया तो जगद्-विख्यात जर्मन डाक्टर लुई कुईने के कथनानुसार यहांतक कहना ठीक है कि आधुनिक जगत में ऐसा कोई बिरलाही मनुष्य होगा जो पूर्णतः स्वस्थ हो। बात यह है कि आंशिक रूप में शरीर से सम्बन्ध होकर प्रकृति की शक्ति बहुत परिमित होजाती है और जब आहार-विहार विषयक प्रकृतिविरुद्ध जीवनचर्या तथा औषध सेवन का संयुक्त प्रभाव शरीरान्तर्गत अवयवों पर लगातार पड़ता है तो विरोधात्मक संघर्षण को नित्यशः जारी रखने के कारण अन्ततोगत्वा मानवी प्रकृति का नितान्त निशक्त होजाना अनिवार्य ही है। वर्तमान समय में उपर्युक्त प्रभाव की विद्यमानता मानव जाति के सभ्य एवं असभ्य दोनों प्रकार के मार्गों में कमोवेश जरूरही पाई जाती है। और जब हम यह देखते हैं कि ऐसा प्रभाव औषधजन्य प्रभाव की व्यापकता के कारण कितना अधिक अनिष्ट मूलक बन जाता हैं तो हमको मानवी अस्वस्थता की विस्तीर्णता पर तनिक भी आश्चर्य नहीं होता। अस्तु औषधियों की अनुपयुक्तता तथा तज्जनित परिणाम की बीभत्सता को ध्यान में रखकर ही प्रा० ग्रेगी ने यह सम्मति प्रगट की है कि चिकित्सा शास्त्र में जिन बातों को सत्य माना जाता है वे ९९ प्रति १०० मिथ्या हैं। उसके सिद्धान्त बिलकुल भोंडे और भद्दे हैं।

हम विपरीत चिकित्सा के विपरीत परिणाम का उल्लेख कर चुके अथवा परिणाम के वैपरीत्य से आधुनिक चिकित्साप्रणाली का वैपरीत्य पूर्ण होना दिखला चुके। अब प्रसङ्गवश हमको सिर्फ थोड़ा ही अधिक कहना है। नीरोग रहने का सर्वोत्तम उपाय प्रकृति का सदैव पूर्णतः सशक्त बनाए रखना है। ऐसी दशा में यदि कभी कोई दूषित पदार्थ शरीर में प्रविष्ट भी होजाता है तो प्रकृति स्वयं ही उसे तुरन्त बाहर निकाल फेंकती है अथवा हानि शून्य बना देती है। परन्तु प्रकृति को अपने अनुकूल बनाए रखने के लिये जीवन को प्रकृत्यानुकूल व्यतीत करना नितान्त आवश्यक है।* वर्तमान युग के सर्व श्रेष्ठ पुरुष महात्मा गांधी ने १४ फरवरी सन १९२१ ई० को तिब्बी कालेज देहली का उद्घाटन करते समय जो व्याख्यान दिया था उसमें आपने कहा थाः— "The science of sanitation is infinitely more ennobling though more difficult of execution than the science of healing."

* Nature is best to be conquered by obeying her--Lord Bacon. अर्थात प्रकृति के आदेशानुसार चलना ही प्रकृति पर विजय पाना है —लार्ड बेकन

अर्थात रोगग्रस्त होकर स्वस्थ होजाने की अपेक्षा, स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी साधारण नियमों का पालन करना कहीं अधिक श्रेयस्कर तदनकूल आचरण कहीं अधिक कठिनतर है।" ठीक भी है। इन्द्रिय दया द्वारा संयमी बनना अत्यन्त कठिन है और मनुष्य कार्य सम्पादन के निमित्त से स्वतन्त्र होने के कारण बिना इन्द्रिय दमन के संयमी हो नहीं सक्ता। फिर कुसंयम का स्वाभाविक परिणाम प्रकृति की क्षीणता अतः शरीर की रुग्णता है। यदि अब भी प्रकृति में काफी बल है तो रोगी का संयमी बन जाना ही उसको पुनः स्वस्थ कर सक्ता है किन्तु साधारणतया विलम्ब का होना अनिवार्य है, फिर कभी कभी प्रकृति इतनी निर्बल हो जाती है कि, केवल संयम से ही काम नहीं चलता। अतः विलम्ब की सम्भावना को कम करने तथा प्रकृति को पुनः सशक्त बनाने के लिए संयम के अतिरिक्त अन्य उपचारों की भी आवश्यकता है। चिकित्सकों का भी यही कथन हैं कि, चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य प्रकृति को साहाय्य पहुँचाना है। परन्तु अनेक युक्तियों तथा प्रमाणों से हम यह सिद्ध कर चुके कि आधुनिक चिकित्साप्रणाली प्रकृति को सहायता देने के स्थान में उसको प्रायः निर्बल ही बनाती है—जिस प्रणाली में कि 'दवा' और 'गजा' दोनों का विधान अत्यन्त अनिश्चित है। तो फिर उक्त सहायता किस प्रकार पहुँचाई जा सकती है? जब हम यह देखते हैं कि हमारा शरीर पञ्चतत्वों से बना है, तथा साथ ही इस बात पर भी विचार करते हैं कि उक्त साहतम का रूप जितना ही प्रकृतिमय हो उतना ही अभीष्ट है तो बिना सङ्कोच कह सकते हैं कि प्रकृति को उपर्युक्त तत्वों द्वारा ही साहाय्य पहुंचाना आरोग्य लाभ के हेतु अत्यन्त प्रकृत्योचित उपाय है। जिसके प्रभावों को आत्मसात कर लेने की शक्ति प्रत्येक शरीर में स्वाभाविक तथा- किसी न किसी मात्रा में—जीवनपर्यन्त विद्यमान् रहती है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक इस प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध से भी कितने ही प्रतिष्ठित ग्रन्थों की रचना की जा चुकी है; तथा उन अनुभवी पुरुषों द्वारा ऐसी रचनाएं अब भी की जा रही हैं*। लेख के शीर्षक को दृष्टि में रखते हुए हमको इस विषय में यहां अधिक लिखने का साहस नहीं होता। अस्तु। संकेत मात्र इतना कह देना अलम् है कि जिस प्रकार प्रकृति तत्वों में हमको स्वस्थ रखने की शक्ति है उसी प्रकार वे हमें को स्वस्थ कर भी सकते हैं। जिस तरह उनके बिना ज़िन्दा होना मुमकिन नहीं उसी तरह उनसे बच कर ज़िन्दा रहना भी नामुमकिन है।

अब हम महात्मा गान्धी के उक्त तिब्बी कालिज वाले व्याख्यान की कुछ पंक्तियां उद्धृत करके इस लेख को समाप्त करेंगे। वे इस प्रकार हैं:—The present practice of medicine on the concentrated assence is a black magic. I believe that a maltiplicity of hospitals is no test of civilisation, is rather a sympton ofdecey. I regard the present system as black magic because it tempts people to put an undue importance on the body & practically ignores the spirit within. The present

* इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सम्मतियाँ विचारणीय हैं।

(१) डा० ग्रालेरी—ग्रामरोगों के नाश करने में सबसे अधिक सहायता उनसे मिली कि जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेज में शिक्षा या डिग्री नहीं पाया। अनेक प्राकृतिक चिकित्सायें ऐसेही लोगों की निकाली हुई हैं।

(२) प्रो० वाटर हाउज़—अं-शिक्षित चिकित्सकों की अपेक्षा मेरा उन अशिक्षित चिकित्सकों पर कहीं अधिक विश्वास है जिनकी चिकित्सा केवल अनभव पर निर्भर होती है। ऐसे लोगों के विश्वविद्यालयों की अपेक्षा संसार में हर समय वहीं अधिक काम किया है।

(३) प्रो० जानकर्क अं-डाक्टरी कालेजों में विद्यार्थियों की बुद्धि नष्ट करदी जाती है। उन्हें प्राकृतिक प्रणालियों के अध्ययन के लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें पुनः योग्य बनने में कठिन परिश्रम पर भी अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है।

(४) प्रो० एकसन-अ-चिकित्सा सम्बन्धी बहुतसी उपयोगी बातें साधारण आदमियों से ही मिलती है।

science of medicine is divorced from religion. A man who attends to his daily Namaz or Gayatri in the proper spirit need never got ill. A clean spirit must build a clean body. I am convinced that the main rules of religious conduct conserve both the spirit and the body—अर्थात "औषधियों का प्रचलित व्यवहार अथवा उसकी सारूपिता एक स्याह जादू है। मेरा विश्वास है कि चिकित्सालयों की संख्या वृद्धि सभ्यता की मापक नहीं प्रत्युत अवनति की ही चिन्ह है। मै आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को 'स्याह जादू' इस कारण कहता हूं कि वह शरीर को अनुचित महत्व देने की ओर मनुष्यों को प्रेरित करती है। और व्यावहारिक रीति पर आत्मा की उपेक्षा करती है। आधुनिक ओषध विज्ञान धर्म से वियुक्त है। जो मनुष्य प्रतिदिन "नमाज़" वा गायत्री का विधिपूर्वक अभ्यास करता है उसका कभी अस्वस्थ होना आवश्यक नहीं। शुद्ध आत्मा शरीर को भी शुद्ध ही रखती है। मैं यकीन करता हूं कि धार्मिक आचार के मुख्य नियम आत्मा और शरीर दोनों की रक्षा का ख्याल रखते हैं।" समस्त कथन का सार यह कि महात्मा जी के बिचार में मनुष्य का धर्मपरायण होना ही उसके स्वस्थ रहने का एक मुख्य साधक है। ठीक भी है क्योंकि वही धर्मपरायणता मनुष्य को केवल ऐसे कामों से बचाती ही नहीं है जिन से आत्मा के मलिन होजाने की सम्भावना है वर ऐसी बातों की ओर प्रवृत्त भी करती है जो आत्मशुद्धि में सहायक हों। इस प्रकार मनुष्य का प्रकृति से सम्बद्ध रहना अनिवार्य है क्योंकि और तरह तो अभीष्टसिद्धि हो नहीं सकती। परिणाम, स्वास्थ्य की उत्तमता है। सारांश यह कि उद्देश्य पूर्ति के लिये हमको अन्ततोगत्वा प्रकृति का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। अतः स्वास्थ्य रक्षा निमित्त से जिस प्रकृति के साथ हमारा इतना घना सम्बन्ध है वही प्रकृति स्वास्थ्यसुधार के लिए भी अत्यन्त सरल, अत्यन्त सुलभ तथा अत्यन्त निश्चित महोषध है जिसकी प्रयोज्य मात्रा में किंचित् कमोवेशी होजाने पर भी हानि की आशंका नहीं। यथासम्भव प्रकृति के मौलिक अंशो से ही संसर्ग रखते हुए लोग शारीरिक तथा मानसिक यंत्रणाओं से मुक्ति पासकते हैं और मानव-जीवन को सार्थक बना सकते हैं।

भाव मृग

लेखक—श्रीयुत ब्रह्मेश्वर शर्म्मा।

भाव का मृग क्यों भाग रहा?

कबि कुल मण्डित कविता पति ने, सविता शक्ति त्रिशूल।
खेल खेल में हन्त, आज यों दिया अंग में हूल॥
अलंकार रस अर्थ कामिनी भूषित वीणा-कूक।
विवर बन्ध से विगल हुई बस हुई मूक, दो टूक॥

चमत्कार मय चपल बिज्जु से दृष्टि वृष्टि तम पुञ्ज।
हुई और नीरवता जागी कर निनाद मय कुञ्ज॥
मानस नेत्र मरुस्थल तृष्णा तृषित त्रास से त्रस्त।
भावी कविता पति को देखा प्रथम प्रीति से ग्रस्त॥

* * * *

उठी लेखनी कण्ठ कुतरनी, मार छलांगे भाग चला।
मृत या जीवित कुछ भी हो फिर लेकिन वह तो भाग चला॥

भीषण हड़ताल !

[भविष्य—भूधर की शिखर पर बैठ कर]

लेखक—श्रीयुक्त "प्राणदास"

(१)

आज जब मैं इस "आबाद बीराने" को देखता हूं तो कलकत्ते की पहिली हड़ताल और उसके साथ उस काल की कई बातें मेरी आंखों के सामने आजाती हैं। आज कल के सम्राट् ऐडवर्ड तब युवराज थे। उनके आगमन पर देश व्यापी हड़ताल मनाई गई थी। और बहुत से बाज़ारों में कलकत्ते में ऐसे ही दृश्य तब भी देखने में आये थे।

"क्यों जी उस हड़ताल में तो आप लोगों ने सुना है मारपीट कर दी थी; आपकी शान्ति भङ्ग होगई थी ?" रवी ने जैसे मेरे मन की बात ताड़ कर कहा। "कोई सा थाना भी तो जला दिया गया था ?"

इतने दूर हम निकल आये। पर घर से बाहर पहिली बार रवी की ज़बान खुली थी। मैंने कहा "रवी, तुमतो तब निरे बच्चे थे। इसी लिये तुम्हें वे बातें ठीक याद नहीं। थाना कलकत्ते में हड़ताल के कारण नहीं जला था। वह तो गोरखपुर की तरफ चौरी चौरा की घटना है जिसे तुम याद कर रहे हो; मैं मानता हूं कि उस समय हमारा संगठन नहीं के बराबर था। पर यहाँ की हड़ताल से सरकार उस समय कांप अवश्य गई थी। हमें भी वास्तव में अपनी सङ्गठित शक्ति का ज्ञान उसी समय से हुआ। पर इसे आज दस बरस होगए। अब तो बात ही दूसरी है।"

क़ौमी ग़दर से झण्डे जहां फहराया करते हैं उस भवन के नीचे हम जारहे थे। अभी तक हमें एक भी दुकान खुली नहीं मिली। दर्शकों की चहल पहल इधर अधिक थी। मैं इन दस वर्षों में गुजरी घटनाओं को सोचने लगा। महात्मा जी के जेल जाने पर देश में निराशा और फूट के जो बादल छा गये थे उनसे आज की कल्पना कौन कर सकता था ? देश के सच्चे हितैषियों में भी कई दलबन्दियां हुईं। देश में न जाने कितनी पार्टियां बनी और बिगड़ीं। पर कुछ लोग पुराने प्रोग्राम पर चुप चाप चलते ही रहे। असहयोग सिद्धान्त का असीम फैलाव इन्हीं के कारण हुआ। ओहो देश में कैसी निराशा थी ! नौजवानों में से बहुतों ने कैसी पीठ दिखाई थी !! पर धन्य लगन उनकी जिन्होंने पसीने की बूँद में लाली देखी और जो डटे रहे। यह सेहरा किसके सिर है आज यह निर्णय कठिन नहीं है। यह शक्ति हमारे संचित तप और त्याग का ही फल है।

"डिग डिग, डिग डिग डिग डिग।" डुग्गी की आवाज़ से हमारा विचार प्रवाह अकस्मात् टूट गया। एक गोरा सारजेण्ट कुछ भीड़ के आगे आगे डुग्गी पीटता चला आरहा था। हम एक ओर ठहर गये। सरकार बहादुर की घोषणा थी। "कि, सब शांति प्रिय और राजभक्त प्रजा को निर्भय होकर दुकाने खोलनी चाहिये। इत्यादि, इत्यादि"। चन्द क़दम पीछे कुछ लोग गाते जा रहे थे "नहीं रखणी ! नहीं रखणी सरकार ज़ालिम नहीं रखणी !" पर हुल्लड़बाज़ी इस भीड़ में नहीं थी। कुछ देर में यह तांता समाप्त होगया। रवी और मैं दोनों एक दूसरे को देख हँसने लगे। तब रवी ने गम्भीर भाव से कहा "सरकार जागी है। अब इसके कल पुर्ज़ों में हरकत आई है।"

भारत सरकार सचमुच एक विचित्र मशीन थी। इसमें छोटे बड़े पुर्ज़ों का अपूर्व "बन्दोबस्त" था।

उपाधिधारियों की दशा।

(चित्रकार श्रीयुत मोहनलाल महतो)

अदब क़ायदा खुशामद और जीहुज़ूरी की बेड़ियों से हाथ पैर बँधे हैं, वारलोन और सरकारी चन्दों ने लँगोटी पहना दी है, शरीर पर सिर्फ़ सरकारी खिलतें (तमगा, पगड़ी, चोगा, और म्यान) शेष हैं।

"इस वक्त सिर्फ़ यही एक दवा हमारे मतब में नहीं है!"

जैसे ही इसमें सौहार्द्र का अभाव भी था। इसकी कल्पना शक्ति मुर्दा हो चुकी थी। इसके शुभ कार्य भी अशुभ घड़ी में होते। "प्रेस्टिज" के कंगूरे से नीचे उतरते उतरते या "लाल फीते" की उलझनें सुलझाते सुलझाते अवसर हाथ से निकल जाता। कभी तो यह कीचड़ में धँसी बैलगाड़ी से भी धीरे चलती, कभी कभी चींटी मारने को कुल्हाड़े से काम लिया जाता। कोई नवीन रक्तकाण्ड, कोई ताजा असह्य अपमान मुर्दा दिलों में आग फूंक देता। वास्तव में इस अनूठी अड़चन— "आत्मबल"—को हटाने के लिये अब यह सरकार निकम्मी प्रमाणित हो चुकी है—जैसे तेज रफ्तार घोड़ा भी हवा में नहीं उड़ सकता।

नहीं तो आज यह हालत क्यों होती ? क्या सरकार को आज अपनी कमजोरी और कांग्रेस की शक्ति का ज्ञान नहीं है ? क्या तीन महीने से कांग्रेस ने चुनौती नहीं दे रखी ?

आज पन्द्रह दिन से रेल की चार बड़ी बड़ी लाइनों में हड़ताल है। कई रोज से कोयले की खानें बन्द हैं। तेल की खानें बन्द हैं। बड़े बड़े कारखानों की इस नेशनल स्ट्राईक में शामिल होने की खबरें आरही हैं। और परसों चार बजे से ता-- नगर के सभी काम करने वाले धोबी, नाई, नौकर, कहार आदि आदि काम छोड़े हुए हैं। खानसामा एसोसिएशन, डाक मजूर सभा उडीया महासभा—और कौन सभा नहीं जो इस हड़ताल में शामिल नहीं हो चुकी।

टगोर स्ट्रीट के चौराहे पर भीड़ कुछ अधिक है। लोग शीघ्रता से बांई ओर जा रहे हैं। सुना है कोई दुकान खुल गई। हम भी उधर होलिये। भीड़ में से रास्ता बनाते हम आगे बढ़े। खान पान की सामग्री की यह एक अँग्रेजी दुकान थी, कई गोरे काले साहिबों का यहां अच्छा मजमा था। दुकानदार मनमाने दाम लेता था। पर लोग उस पर टूटे पड़ते थे। देखते देखते उसकी एक एक चीज उठी जा रही थी।

रवी ने खिलखिला कर हँसके कहा "यह देखिये।"

एक मेम साहिब छाता लिये एक कुलीपर पञ्चम स्वरमें बिगड़ रहीं थी। टोकरा भरा हुवा सामने रखा था। पर कुली दांत निकाले बैठा था। एक स्वयंसेवक ने आकर मेम साहिब के छाते से कुली की खोपड़ी को बचाया। वह अपने सिर पर टोकरी उठा साथ हो लिया। कई स्वयंसेवक लोगों को अपने अपने घर जाने को कह रहे थे। इस लिये हम आगे चल पड़े।

हर महल्ले में कांग्रेस की ओर से दुकानें खुली हैं। जहां चिट दिखा कर हम आप सस्ते दामों पर चीजें ले सकते हैं। पर जिन की चिट लेने में हेटी हो उनके कष्ठ की उत्तरदात्री कांग्रेस नहीं हो सकती।

हम ने और कोई दुकान खुली नहीं पाई। कहीं कहीं दुकानदार अपने दरवाजों पर बैठ बातें कर रहे थे। पर बैठने वाले, चलने वाले, सब किसी बिवाह के बाराती से जान पड़ते थे। उनमें वैसा ही चहमन, और वैसा ही बनाव सिंगार दिखाई देता था।

इस निराले तमाशे को देखते हुए हम दूर निकल गये। भविष्य में क्या है यह कहना आज कठिन है। मैं आशाओं के रंग बिरङ्गे महल खड़े करता। पर आशंकायें एक ही थपेड़े में उन्हें गिरा देतीं।

"कहिये रवी बाबू" मैंने देखा रवी का हरा तमतमा रहा था। उसकी आंखें चमक रहीं थी। यह कौतूहल था या जातीय गौरव का उदय-हम नहीं कह सकते। वह निश्चित भाव से बोला। "अब स्वराज हो जाएगा"।

(२)

आज हड़ताल हुये पूरे पांच दिन बीत गये। कलकत्ते की दशा शोचनीय हो रही है। अभी तक लोगों की तरफ से एक जगह भी शान्ति भङ्ग नहीं हुई। पर, सरकार इस प्रकार जातीयता की दीवारें खड़ी होते ठण्डे दिल से कब देख सकती थी ? कल से माशलला की घोषणा हो गई है। जगह जगह गोरे

सिपाही खड़े हैं इनके अत्याचारों की नई नई खबरें आ रही हैं। शहर भर की गाड़ियों पर अब सरकारी कब्जा है। पर घोड़ों के लिये दाना नहीं मिलता। उनको देहातों में खुले छोड़ दिया गया है। तेल का भी बहुत अभाव है। मनमानी कारवाई करने के लिये हर घंटे नई नई सरकारी सूचनायें निकलती हैं। आज भोर से गिरफ्तारियों का भी बहुत ही जोर है। कांग्रेस ने एक महीने तक डटे रहने का इन्तजाम कर रखा है। पर इन कठिनाइयों की कल्पना कौन कर सकता था? कार्य कर्त्ताओं, मोहल्ला--मंत्रीयों-के सात आठ गरोह एक दूसरे के पीछे जेल में बन्द कर दिये गए हैं। अब नौवां गरोह काम कर रहा है अभी बीस से अधिक झुण्ड बाकी हैं।

आज उत्तर कलकत्ते में हड़ताल के खुल जाने की हवा गरम थी। पर सुना कि लोकप्रिय मुकर जी बाबू का मकान गोरों ने लूट लिया। और स्त्रियों को अपमानित किया। प्रसिद्ध नेता—विश्वास को कोड़े लगाये जाने की खबर भी आग की तरह नगर में फैल रही है। तब कैसे हड़ताल खुल सकती है? लोग अब बहुत कुछ जान गये हैं। सरकार की कठिनाईयां उन से छिपी नहीं। क्या कई एक कर्मचारियों ने छिपे छिपे कांग्रेस की "चिट" नहीं मांगी?

पर बहुत लोग घबरा उठे हैं। नगर में भारी आतङ्क फैल रहा है। लोग नगर के बाहर देहातों में भाग रहे हैं। हरी बाबू का फुफेरा भाई कल देहात से आया था। उसका कहना है कि देहात बाहर वालों से खचा खच भर गए हैं। कहीं कहीं लूट पाट होने की भी खबरें आई हैं। किसान लोग कहते हैं स्वराज हो गया। वह अनाज नहीं बेचते उसे दबाये बैठे हैं। किसानों के दल ढोलक मँजीरे लिये गाते बजाते अपने अड़ोस पड़ोस के गांवों में घूमते हैं। रोज भोज यज्ञ पूजा आदि उत्सव मनाए जाते हैं। "हमारे गाँव में भी आठ घुड़सवार आये थे। पहिले बन्दूक दिखाने लगे। पर निर्मल बाबू-उन्होंने सब इम्तहान पास कर लिया है। मेरे साले के चचा होते हैं—उन्होंने बात की। बस तब तो वह सवार बड़े भले निकले। हमारे साथ ही आधी रात तक गाते रहे"।

देश भर से ऐसी ही हड़ताल की उड़ती खबरें आई हैं। पर कौन सी बात मानी जाय। हजारों बातें शहर में मशहूर हैं। सुना है सरकार को खाने की सामग्री का टोटा अभी से प्रतीत होने लगा है। जहां तहां से भरकर जो पांच जहाज गल्ले के इंगलैण्ड भेजे गये थे वह भी वापस बुला लिये गये। अनाज आये कहां से? दुनियां भर में कौन देश इसे बेचने को तैयार है। एक साल से भारत से अन्न बाहर नहीं गया। रूस में अकाल है ही। और इसपर इंगलिस्तान की यह हालत है। हर रोज वहां से बेकारी के बढ़ने, दंगे, फसाद, स्ट्राइक तथा लाल झंडों के प्रदर्शन की खबरें आती थीं। एशिया भर में आज लोग इङ्गलिश माल को त्याज्य समझते हैं। उसके अपने घर में फूट है। जिस दिन पिकेडली में प्रधान मंत्री गोली से मारे गये उसी दिन से वहाँ लाल क्रांति धीरे धीरे पर साफ तौर पर, अपना रंग जमा रही है। स्वर्णमुद्रा की झङ्कार में हृदय की उच्च आकांक्षायें अभीतक अंग्रेजी जनता को सुनाई नहीं पड़ती थीं। पर अब अंग्रेजी माल बिकता ही नहीं। सोना वहां से आये इसीलिये समान अधिकार, सच्ची भलाई आदि पर उनका ध्यान खिंचने लगा है। साथ ही साथ आजकल के नए बहिष्कारों से, अंग्रेजों का अभेद्य जल कोट कमजोर होगया है अब तो न जाने कब इस खोखले ढांचे का अन्त होजाये। प्राचीन मान मर्यादा पर कबतक गुजर हो सकती है।

यह जो हवाई जहाज चीलों की तरह आज भोर से हमारे सिरों पर मंडला रहे हैं यह इंगलिस्तान पर भी मंडला सकते हैं। उसकी समुद्री सेना इन्हे रोक नहीं सकती। सुना है सरकार ने महासभा कांग्रेस के बड़े दफ्तर पर बम फेंकने की धमकी दी है। पर लोगों की भीड़ इससे जरा भी कम नहीं हुई। आज भी वहां चौतीस सभाओं के प्रतिनिधियों की बैठक थी। नई परिस्थिति पर इसमें विचार

होने को था। बहुत सी हिन्दुस्तानी फौजों ने निहत्थे लोगों पर गोली चलाने से इन्कार किया है। पर सिपाहियों को अभीतक हड़ताल में नहीं बुलाया गया। हमारी महासभा बहुत फूंक फूंक कर चलती है। कई लोग इससे असन्तुष्ट हैं। गली गली में आजकल राजनैतिक टोलियां कायम हैं। इनमें जमीन आसमान के कुलावे मिलाए जाते। प्रजातंत्र की घोषणा की ठानी जाती। इनाम और सजायें देने के मनसूबे गांठे जाते। नयी नयी युक्तियां वर्तमान शासन-सत्ता को उखाड़ फेंकने की सोची जाती पर महासभा मजबूत बनी है। उसने उत्तेजना में सफलता के नशे में अपने हवास कायम रखे। अपनी निश्चित शांतिमय नीति से वह एक इंच भी नहीं टली। जनता भी नकली लोगों को पहचानती है। राष्ट्रपति और उसके साथियों को भी वह जानती है। उनकी बात पर जान देने से बहुत कम लोगों को इन्कार है। दिन रात यह महारथी उस कमरे में बैठे काम करते हैं। वहीं खा पी लेते हैं। बैठे बैठे सोजाते हैं। लोग महासभा की कार्यवाही बड़े शौक से देखते। कभी कभी बाहर बड़ी भीड़ होजाती। कई लोग नये अत्याचारों की सूचना लेकर पहुंचा करते। कई नयी स्कीम पेश करते। कई भेंट चढ़ाते। कभी कभी राष्ट्रपति राष्ट्रपति की आवाज उठाई जाती। प्रतिनिधि उन से खूब बातें करते। जब राष्ट्रपति छज्जे पर आते तो जयध्वनि से आकाश गूंज उठता। हे ईश्वर यह कोई "शैहरे खमोशां" है या कलकत्ता नगर! बाजारों में कहीं किसी मनुष्य का निशान भी दिखाई नहीं देता। ऊंची अटारियां खड़ी हैं। पर जनशून्य अरण्य की तरह चारों ओर गम्भीर निस्तब्धता का अटूट साम्राज्य है। कहीं कहीं गोरे सिपाही कहीं कहीं स्वयंसेवक खड़े हैं जैसे पत्थर में तराशे गए हों। घर से निकलते डर मालूम होता है। रास्ते में कोई मिलता है तो धीमे से बात होती है। नहीं तो भूतों की तरह लोग चुपचाप पास से हो के निकल जाते हैं। ऐसे सहमे हुए स्त्री पुरुष एक बार पहिले मैंने देखे थे। जब बिहार में बांध टूट जाने से कई गांव बह गए थे। उसके पीछे अकाल और महामारी ने एक ही साथ प्रचंड कोप किया था। यह महामारी उससे कौन कम है। बुधवार तक इसी नगर से तेरह हजार बे कसूर मरद औरत जेलमें चले गये थे। सब बड़े मकान आज बन्दी ग्रह बने हैं। जो बाकी बचे हैं उनको भूखे रह कर दिन भर काम करना होता है। रात को भी कई बेर पहरा देना पड़ता है। सड़कों में झाड़ू तक स्वयं देते हैं। पर किसी के मुंह से शिकायत सुनाई नहीं पड़ती। नौकरशाही की कठोरता के साथ साथ लोगों की दृढ़ता भी बढ़ती जा रही है।

स्टीमर घाट पर आज हमारी ड्यूटी थी। उधर ही हम जा रहे थे। बङ्गाल स्टोर्स के पास लोग हाथ से लिखे पोस्टरों को पढ़ रहे थे। पोस्टरों विज्ञापनों से हम ऊब गये थे। बिना ठहरे हम आगे हो लिये। एक आदमी सामने से आ रहा था। उसकी चाल शराबियों की ऐसी अस्थिर थी। करीब आने पर मैंने देखा विनोद हैं। उसकी डाढ़ी बढ़ी हुई थी। सूरत भी बहुत बदल गई थी। इसीसे मैं न पहचान सका।

"विनोद भैया, कहां जाते हो, ठहरो तो।" विनोद ने ठिठक कर देखा। वह रूखी और निरर्थक हंसी हंसने लगा।

"इधर मेरा पहरा था"

"शीतल कहाँ छिपा रहता है? उसे नहीं देखा"

विनोद ने स्थिर भाव से कहा" वह तो एक गोरे की गोली से मारा गया आज पांच दिन हुए। फिर कुछ देर सन्नाटा रहा।" उसकी टोपी पर तिरंगा झंडा देख किसी ने गोली दाग दी। आप कहिये।"

मैं सुन्न हो गया। शीतल की भोली सूरत मेरी आंखों के सामने घूमने लगी। कई मिनट हम चुप खड़े रहे। जी कड़ा कर मैं फिर बोला "माता जी की दशा बड़ी खराब हो गई।" विनोद ने बड़ी शान्ती से उत्तर दिया। पर उसके होंठ फरक रहे थे।

"वह भी कल स्वर्ग धाम चली गई" मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। पानी में डुबकी लगाने पर

जैसे सांस नहीं आती जैसा मैं हो गया। मेरा सिर घूम रहा था। सनसनाहट मेरे कानों में गूंज रही थी। थोड़ी देर बाद मैंने सुना विनोद बोल रहा है।

"आज पानी की कल बन्द करने की घोषणा निकली है सो देखी होगी। अब पानी ढोने का काम भी करना होगा आज कल इधर मैं मंत्री हूँ" विनोद चला गया। पर मैं वैसे ही खड़ा रहा। भगवान क्या अभी हमारी तपस्या पूरी नहीं ?

पानी कई घण्टों से बरस रहा है। हम सब एक लम्बे कमरे में बिस्तर बिछाये पड़े हैं। कुछ मिट्टी के दिये के आस पास बैठे पढ़ रहे हैं। मैं पड़ा तरह तरह की बातें सोच रहा हूं। आखिर मैंने उठ कर पूर्व दिशा की खिड़की खोल दी। अभी पौ नहीं फटी थी। हवा के एक झोंके से चिराग बुझने लगा। लोगों ने हल्ला करना शुरू किया।

"भई, अजब झक्की हो। भोर तो होने दो। कौन सा मेला लगा है। जेल में भी ताक झोंक की आदत न गई"।

नीचे सड़क पर सचमुच कोई मेला नहीं लगा था पर वह क्या दूर से दो सितारे दिखाई देने लगे। क्रमशः यह बड़े होते गये। पानी में छप छपाती एक मोटर गाड़ी हमारी ओर आ रही थी। यह खिड़की के नीचे आकर खड़ी हो गई। सब कोई उठ उठ कर खिड़की में जमा होने लगे। "क्या हड़ताल टूट गई" यही आशंका सब के चेहरों पर झलकती थी। पर सब चुप चाप हैं। एक लम्बे साहिब गाड़ी में से उतरे। मेरे पीछे से किसी ने कहा। यह तो गवर्नर हैं"। इसका अर्थ क्या है। कई मिनट गुजर गये। हमारे दिल भी गाड़ी के इञ्जन की तरह धक धक कर रहे थे। मुद्दत के बाद आखिर दरवाजा खुला। मि० नेपीयर—हमारे जेलर ने कहा "महाशयो मैं आप को हिज एक्सलेन्सी गवर्नर बंगाल से परिचय कराता हूं। वह आप को एक खुश खबरी सुनाने खुद आये हैं" तब गवर्नर बोले "हमें यह कहते हुये खुशी होती है कि आज हड़ताल का अन्त होगा। सरकार हिन्द ने कांग्रेस की सब बातें मान ली हैं। पारलियामेंट की मंजूरी आ गई। अब आप सब आज़ाद हैं। विस्तार पूर्वक घोषणा पीछे होगी। हमें बहुत जगह जाना है। इस लिये क्षमा करें"। हम सब बुत बने खड़े रहे किसी ने हर्ष प्रगट नहीं किया। किसी ने कोई जय घोषणा नहीं की। हमारी समाधि टूट गई। यह क्या है ? क्या समुद्र अपना तट तोड़ कर नगर में आ गया ; यह घोर गम्भीर ध्वनि इधर ही आ रही है। अब यह स्पष्ट होती जा रही थी। अपने प्यारे राष्ट्रीय गीत का मधुर उतार चढ़ाव उस कलकल निनाद में भी साफ सुनाई देने लगा। लतीफ हुसेन को रोते देख मैंने अपना चेहरा भी आंसूओं से तर पाया। गीत के शब्द "जै जै हिन्दुस्तान" आदि अब समझ आते थे। बूढ़े मुखोपाध्याय ने हिचकियों को रोकते अपनी भारी आवाज में उस गीत को गाना आरंभ कर दिया बूढ़े मुखोपाध्याय का बेटा कुछ दिन हुये गोली से मारा गया था। इसे हम सब जानते थे इसीलिये यह विजय गीत होता हुआ भी ऐसा दिलसोज था इसमें हर्ष के साथ साथ शांति संयम मिश्रित था कितने मुखोपाध्याय की आवाजों की यह उपज थी हम सब ने भी गायन में अपना स्वर मिला दिया और नीचे उतर कर उस ज्वार भाटा में बह गये हर गली कूचे से स्त्री पुरुष छोटे बच्चे सफेद बालों वाले बूढ़े, प्रौढ़ स्त्रियाँ इस महासागर में आ आकर मिलते गये मैदान में आज सभा थी। शहर भर वहीं उमड़ा चला आता था। जैसे पहाड़ी नदियां आआकर किसी शान्त सरोवर में गिरें।

इस सरोवर में शान्ति विराजती थी। आज व्योटिक कंठों से दोनों के रक्षक भगवान के गुणगान के लिये इस नवीन भारत को पुरातन प्रभू की आराधना के लिये हम सब इकट्ठे हुए थे इसीलिये इस महासागर में शान्ति का राज्य था।

प्राची में अभी लालिमा आई ही थी जब पहिली बार जैसे पल्लवित खेत में हवा के झोंके से लहर

पैदा होजाती है ऐसे किसी ने कहा था "महात्मा जी भी आ रहे हैं।" यह हमारी आशाओं की चरम सीमा थी।

उस दिन की सभा में क्या हुआ यह आज इतिहास की बात है इसका जिकर व्यर्थ है अब गदगद कंठ से उस दिन की चर्चा करते अघाते नहीं।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध बैंक की दोचार विचित्र बातें।

ले०—श्री रामनाथ लाल 'सुमन'

[पाठकों में से बहुतों ने "बैंक आफ इङ्गलेण्ड" का नाम सुना होगा। वर्त्तमान आर्थिक जगत में इस बैंक का बड़ा महत्व और उत्तर दायित्व पूर्ण स्थान है। यूरोपीय बैंकों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि ज्यों ज्यों व्यापार की उन्नति होती गई त्यों त्यों बैंक की स्थापना और उत्क्रान्ति भी होती गई। यूरोपीय देशों में वेनिस और जिनोआ नामक नगर प्रसिद्ध व्यापारिक नगर थे। पहले पहल इन्हीं नगरों में सार्वजनिक बैंकों की स्थापना हुई। सन् १५८४ ईस्वी में वेनिस नगर की व्यवस्थापिका जन सभा [सीनेट] ने बैंक स्थापित करने की आवश्यकता को अनुभव करके एक कानून पास किया। इसी कानून के बल पर वानस नगर में "बैंकों द रायल्ता" Banco de Railto) नामक बैंक की स्थापना हुई। इसके बाद सन् १६९४ ईस्वी में "बैंक आफ इङ्गलेण्ड" स्थापित हुआ। इस लेख में इसी बैंक की कुछ विचित्र बातें दिखलाई हैं। इस बैंक के स्थापित होने का मुख्य कारण यह था कि उस समय सरकार को कुछ रुपए उधार लेने की जरूरत पड़ी। इसी के कारण यह बैंक खुला सन् १६९४ ईस्वी की २१ जून से लगा कर २ दूसरी जुलाई तक केवल दस बारह दिनों में सरकार को उधार देने के लिये १२,००,०००पाउण्ड इकट्ठे कर लिये गए। यही इस बैंक के स्थापन काल का इतिहास है धीरे धीरे इस बैंक का व्यवसाय बढ़ने लगा। एक जमाना था जब कि बैंक में केवल ५४ कर्म्मचारी काम करते थे और उनकी तनख्वाह केवल ४३५० पाउण्ड वार्षिक खर्च होता था।

इस से प्रकट होता है कि उस वक्त में काम बहुत कम था। सन् १८४७ ईस्वी में बैंक कर्म्मचारियों की संख्या ९०० से भी अधिक हो गई और उस समय वेतन खर्च २,१ ,००० पाउण्ड से भी अधिक कूता गया था, बैंक को उत्तरोत्तर उन्नति का यह अच्छा नमूना है, ज्यों ज्यों समय बीतता गया यह बैंक उन्नति करता गया, सन् १८६७ ईस्वी में बैंक कर्म्मचारियों की संख्या १००० से भी अधिक हो गई उस समय वेतन खर्च तथा पेन्शन खर्च मिला कर कुल २८०००० पाउण्ड बढ़ गया था, सन् १९०६ ईस्वी में कार्य्य कर्त्ताओं की संख्या १४०० तक पहुँच गई थी, यदि पाठक इस बैंक के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में कुछ विशेष जानना चाहें तो वे मिस्टर थोरोल्ड राजर्स नामक लेखक प्रणीत History of the first nine Years of the Bank of England नामक ग्रन्थ तथा मिस्टर एफ० जी० हिल्टन प्राइस की Handbook of London Bankers नामक पुस्तिका देख सकते हैं

——"प्रभा"—सम्पादक]

संसार में कदाचित ही काई ऐसी संस्था हो जिसके जीवन में बैंक ऑव इंग्लैण्ड से अधिक आश्चर्य मय घटनाएं घटा हों। अनेक बार वह नष्ट होते होते बचा है; चोरी करने, धोखा देने और जाली नोटों एवं चेकों के भुनाने में कितनी ही बार उसकी सम्पत्ति विनाश चोरों ने किया। अभी बहुत दिन नहीं बीते कि दस लाख पाउण्ड की एक चोरी का हाल इंग्लैण्ड के कई पत्रों में प्रकाशित हुआ था। संसार के अनेक प्रसिद्ध अभियुक्तों ने इस बेंक का सर्वस्व हरण करने एवं उस पर अपनी बुद्धि अजमाने की चेष्टा की किन्तु आज भी वह ज्यों का त्यों सुरक्षित है। उसकी रक्षा का प्रवन्ध इतना उत्तम कि बहुत अधिक सुरक्षित वस्तु के बारे में इंगलण्ड के साधारण जन सभा में एक लोकोक्तिसी चल पड़ी है कि 'फलां चीज बैंक आंव इंग्लैण्ड' की भांति सुरक्षित है।'

यह बैंक (Bank of England) चार एकड़ अर्थात् लगभग दश बीघे के घेरे में फैला हुआ है और उसकी इमारतों से ७०००० सत्तर हज़ार पौण्ड (लगभग साढ़े दस लाख रुपए) सालाना आमदनी का अनुमान किया गया है। यदि तीन प्रति सैकड़े सूद के हिसाब से उस भूमि की कीमत निकाली जाय तो इक्कीस लाख पौण्ड अर्थात् ३ तीन करोड पन्द्रह लाख रुपये मिलेंगे! चार एकड़ भूमि का मूल्य सवा तीन करोड़ रुपये के लगभग देख पाठक चकरांय न, यदि इस जमीन को बेचा जाय तो इस से भी अधिक रुपये मिलने की आशा की जा सकती है।

बैंक की वर्तमान इमारतों, खजानों, छापने और दबाने की मशीनों में करीब एक करोड़ रुपये लगे हैं और अगर इमारतों के मूल्य में सोने की सीलों, सिक्कों, जमानत की वस्तुओं और अप्रचारित नोटों के दाम भी जोड़ दिये जांय तो कहा जा सकता है कि लगभग दो अरब रुपये चार एकड़ के क्षुद्र परिमाण में भरे हुये हैं!!!

बैंक की नीव छासठ (६६) फीट गहरी और बीस फीट मोटी है! नींव के ऊपर उतनी ही चौड़ी सात फीट गहरा पानी से भरी एक झील है और उस के ऊपर फिर फ़ौलाद की मोटी चादरें हैं! ऐसा इस लिए किया गया है कि कोई किसी प्रकार से धन दे सके।

यदि कोई ऊपर से बैंक में प्रवेश करना चाहे तो उसके लिए भी ठीक वही प्रबन्ध है अर्थात् गजों मोटे पत्थरों एवं ईंटों की जोड़ाई केवल फ़ौलाद की कई फीट मोटी चादरें देकर उसके नीचे एक फीट ७ फीट गहरी झील बनाई गई है और इस प्रकार चारों ओर से चोरी इत्यादि के लिये भीतर प्रवेश करने का मार्ग बन्द कर दिया गया है।

आरम्भ से लेकर आज तक इस बैंक की साख ज्यों की त्यों बनी है। केवल एक बार जनता में उसके प्रति अविश्वास के भाव उत्पन्न हो गये थे और यदि उस समय एक डाइरेक्टर अपने बुद्धि-कौशल से उस के साख की रक्षा न करता तो इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्र का विश्वास उस पर से सदा के लिए उठ जाता।

बात यह हुई कि बैंक नोट लेने वालों में भीतर ही भीतर एक प्रकार का अविश्वास सा उठ खड़ा हुआ और मजा यह कि उसकी ख़बर भी किसी को न हुई। इसका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं बताया जा सकता कि उस समय लोगों के भाव ही वैसे हो गये थे।

एक दिन सवेरे ज्यों ही बैंक खुला, जोश में भरे हुए आदमियों की भीड़ सड़क पर आकर खड़ी होगई और नोटों के बदले नक़द रुपये माँगने लगी। सब के हाथ में जितने दाम के नोट थे, उसका आधा ही सोना वा सिक्का बैंक में उस समय मौजूद था और सब के मुख पर बैंक के प्रति अविश्वास के भाव दीख रहे थे। डाइरेक्टर ने एक ओर चुपके से कुछ आदमी नोट देकर अन्य बैंकों से सिक्के बदलने के लिए भेज दिये और दूसरी ओर सब लोगों से कहा कि घबड़ाइये नहीं, सब को नक़द दाम दिया जाता है। इतना कह कर डाइरेक्टर ने बारी बारी से 'सिक्स पेनी' (छः आने के बराबर का एक सिक्का) और शिलिंग (१२ आने का अंग्रेज़ी सिक्का) के सिक्के लोगों को अदा करना आरम्भ किया। इन छोटे सिक्कों की गिनती में उसको इतना समय लग गया कि बैंक के आदमी और बैंकों से सिक्के लेकर आ पहुंचे और इस तरह सब को रुपया अदा कर दिया गया।

इसके बाद लोगों में विश्वास उत्पन्न करने और पुनः साख बढ़ाने के लिए सञ्चालकों ने एक चालाकी की। दूसरे ही दिन से बैंक की खिड़कियों के पास खज़ाँची की मेज़ों पर अशर्फियों से भरे हुये बोरे दीख पड़ने लगे। उन्हें देखकर जनता को विश्वास हो गया कि बैंक बहुत धनी है, उसमें रुपया जमा करने से किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं। जनता बिचारी को क्या मालूम कि बोरों में कोयला भरा है और उसके ऊपर केवल दो चार तोड़े अशर्फियों के रख दिये गये हैं!

बैंक को जिन्होंने धोखा दिया, उनमें दो बहुत प्रधान हैं। पहले का नाम 'चार्ल्स प्राइज' था। वह काली और मुड़ी हुई ऐसी टोपी पहनता कि दाहिनी आंख उस में छिप जाया करती। ऊपर से नीचे तक सारा शरीर वह लम्बे लबादे से ढके रखता था। जाली नोट बनाने में वह अपना सानी नहीं रखता था। लाखों की संख्या में नोट बनाकर बैंङ्क को उसने कई लाख पौण्ड का घाटा दिया किन्तु एक बार वह बड़ी विचित्र रीति से गवर्नमेण्ट के हाथ में पड़ गया।

वह अपने को सदैव छिपा कर रखता था, यहां तक कि अनेक बार साक्षात होने पर भी उसके बारह एजेण्टों में से किसी को उसकी ठीक शक्ल मालूम न थी। कारण यह था कि उसके मुंह का निचला भाग एवं ललाट सदैव छिपा रहता था।

एक दिन इन बारह एजेण्टों में से एक को उसके ऊपर कुछ सन्देह होगया। पता लगाने पर उसे मालूम हुआ कि यह धोखा देकर रुपया एकत्र कर रहा है। एक दिन दूर से उसे आते देखकर वह आदमी किवाड़ की आड़ में छिप गया और ज्यों ही चार्ल्स प्राइज अन्दर घुसा, वह उस पर टूट पड़ा एवं उसकी टोपी खींच ली। उसे धमकी दी कि इतना रुपया मुझे दो अन्यथा पुलिस बुलाता हूं। रुपया देने से इन्कार करने पर उसने उसे पुलिस के हाथ में दे दिया। मुक़दमे में उसे फांसी की सजा हुई किन्तु दो महीने बाद कैदखाने की कोठरी में उसने आत्महत्या कर ली।

आरम्भ से लेकर आज तक बैंक में सेंध लगाने में केवल एक आदमी सफल हुआ। लगभग पैंसठ वर्ष होते हैं कि एक दिन बैङ्क के डाइरेक्टर्स को गुमनाम पत्र मिला जिसका आशय था कि कोई भी आदमी किसी नियत तिथि को आधी रात के समय बैंक के भीतरी खजाने में हम से भेंट कर सकता है। यह धमकी सम्भावना की सीमा के परे थी अतएव डाइरेक्टरों ने यह समझकर कि किसी पगले ने लिख मारा होगा, उधर विशेष ध्यान नहीं दिया किन्तु फिर भी होशियार इंजीनियर के द्वारा जांच कराई गई। इंजीनियर ने सम्मति दी कि कोई आदमी किसी प्रकार भी इन कमरों में प्रवेश नहीं कर सकता। रात भर सन्तरियों ने पहरा दिया कि कदाचित् कोई गड़बड़ी हो ही जाय किन्तु उन्हें एक प्रकार की आवाज के अतिरिक्त (जो चूहों के रेंगने के समान थी) वहाँ और कुछ सुनाई या दिखाई न दिया।

इसके एक सप्ताह बाद पार्सल द्वारा बैंक के डाइरेक्टरों को एक बक्स मिला। खोलने पर उसमें बैङ्क की अनेक बहुमूल्य ज़मानतें निकलीं। उनके साथ ही एक पत्र भी था जिसमें लिखा था कि यदि आज आधीरात को डाइरेक्टर किसी आदमी को बैंक के ख़जाने में भेजें तो मैं जिस तरह होगा भीतर पहुँच कर उनसे भेंट कर लूंगा।

अब तो पगले के पागलपन में बुद्धि का अद्भुत चमत्कार देखकर डाइरेक्टरों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस आदमी की आज्ञानुसार आधीरात से पहले ही तीन आदमी लालटेन लेकर खज़ाने में जा-पहुंचे और प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद चूहों के चलने का शब्द उन्हें सुनाई पड़ा जो क्रमशः स्पष्ट सुन पड़ने लगा। पांच सात मिनट बाद ख़ज़ाने के एक कोने में एक रोशनी प्रगट हुई जो उन लोगों के भली भांति देखने के पूर्व ही गायब होगई। अब उन लोगों को ऐसा मालूम पड़ा जैसे किसी मनुष्य के पैरों की ध्वनि उनकी ओर धीरे धीरे आरही है। अन्त में उनकी दाहिनी ओर पैरों के नीचे आकर वह शब्द बन्द होगया और आवाज़ आई कि आप लोग अपनी लालटेनें बुझादें तो मैं प्रगट हूंगा। लोगों ने ऐसा ही किया। इसके बाद एक आदमी चोर लालटेन लिए हुये उनके पास आकर खड़ा होगया।

उसने बताया कि "मैं" पनालों को साफ करने का काम करता हूं। एक दिन बैङ्क के पास मुझे एक ऐसी नाली दीख पड़ी जो बहुत दिनों से काम में नहीं लाई गई थी। उसके भीतर घुसा तो मालूम हुआ कि वह ख़जाने के ठीक बग़ल में होकर गई है। इसी नल के सहारे मैं उस दिन आया था और ज़मानत की अनेक

बहुमूल्य चीजें निकाल कर अपनी शक्ति पर विश्वास उत्पन्न करने के लिए उन्हें आप लोगों के पास भेज दिया था यदि मैं चाहता तो धीरे धीरे बैंङ्क का सारा खजाना उठा ले जाता और किसी को खबर भी न होती परन्तु मैंने इसे धर्म विरुद्ध समझा। मैंने इसमें की कोई चीज़ नहीं ली है।"

बैंङ्क ने उस व्यक्ति की ईमानदारी पर प्रसन्न होकर उसे सहस्रों पौंड पुरस्कार दिया और ड्रेन की मरम्मत इस तरह करा दो गई कि कोई फिर उसमें घुस न सके।

बैंङ्क को आज तक जिन बदमाशों का सामना करना पड़ा है उनमें सब से बड़ा धोखेबाज और ठग 'बिडवेल' (Bidwell) नाम का एक अमेरिकन था जो अपने गिरोह के साथ सन १८७१ ई० में इंग्लैंड में आया।

उसने समग्र देश में अपने एजेण्ट नियत किये और कहा कि मैं मोटर बनाने का एक बड़ा कारखाना खोलने जा रहा हूँ। वह नकली बिल बनाने में बड़ा निपुण था। 'रथ चाइल्ड' कम्पनी के नाम से नक़ली बिल देकर उसने ४५०० पौंड वसूल किये। इसी प्रकार नकली बिलों के द्वारा उसने १०२००० पौंड से भी अधिक अर्थात लगभग सोलह लाख रुपये भुनाये और दूसरी ओर उन्हें वारेन के नाम से 'कांटिनेंटल बैंङ्क में जमा भी कर दिया। वह बहुत दिनों तक लोगों को इसी प्रकार धोखा देता किन्तु बैंङ्क के खज़ांची ने एक दिन देखा कि दो बिलों पर तारीखें छूट गई हैं। शिनाख्त करने और उनके तारीख देकर भेजने के लिए दोनों बिल जब मेसर्स रथचाइल्ड के पास भेजे गये तब इसका भेद खुला। ठीक उस समय जब कि वह अपने गिरोह के साथ जहाज से भागने की तैयारी कर रहा था, पकड़ लिया गया।

बैंङ्क सम्बन्धी ठगी के मामलों में सबसे पहिली घटना १७५८ की है। इस घटना को हम साख बढ़ाने वाली कहें या घटाने वाली; यह विवादास्पद है किन्तु इतना अवश्य है कि मुजरिम की इस ठगी में; चोरी का भाव कम और उत्सुकता की निवृत्ति का ही भाव अधिक था।

बात यह है कि 'वागन' (Vaughan) नाम के एक क्लर्क ने बात ही बात में एक दिन अपनी प्रियतमा को नोट दिखाते हुए कहा कि इसकी नकल कर लेना कितना सरल कार्य है। प्रेमिका ने उसकी बात को जांच करने के विचार से कहा कि अच्छा ऐसा करके मुझे दिखाओ तो मैं विश्वास करूँ। वागन तुरन्त बीस बण्डल जाली नोट उठा लाया और उसके पास रख दिया। स्त्री ने तुरन्त उसे ले जाकर बैंङ्क के अधिकारियों को दे दिया।

इसके बाद 'वागन' का क्या हुआ, सो ठीक नहीं मालूम किन्तु इतना निश्चय है कि इसके बाद उसके हाथों से जाली नोट फिर नहीं बने।

इस घटना के चालीस वर्ष बाद १७९७ ई० में बैंक ने 'पौण्ड नोट' निकाले और तभी से धोकेबाजियों की संख्या बढ़ने लगी। इसके पहले छः वर्षों में जहां इस प्रकार के मामले में केवल एक गिरफ्तारी हुई थी, वहां पिछले छः वर्षों में अस्सी से भी अधिक हुईं। दिनों दिनों इस कार्य में तरक्की ही होती गई, यहां तक कि सन १८२० ई० में इस प्रकार के जाली कार्यों में सवा तीन सौ आदमियों को सजा हुई।

अब अनुमान किया गया कि फाँसी को सजा देने से इन जालों में कमी नहीं हो सकती अतएव अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों के जोर देने पर फांसी की सजा निकाल दी गई।

इन जाली बिलों, नोटों और चेकों की वृद्धि के कारण अठारवीं शताब्दी के अन्तिम और उन्नीसवीं के प्रारम्भिक वर्षों में बैंक को हजारों पौण्ड वार्षिक की हानि उठानी पड़ी। इनमें असलेट (Aslett) और 'फान्टलेरी' (Fauntleroy) नाम के दो व्यक्तियों के कारण सबसे अधिक घाटा हुआ। १८०३ में 'असलेट' ने नकली चैकों के द्वारा बैंक से ३४२००० पौण्ड (साढ़े एक्यावन लाख रुपये) वसूल

किये और १८३० में 'फाण्टलेरी ने' अपने एटर्नी की सहायता से ३६:००० पौण्ड अर्थात् चौव्वन लाख रुपये उड़ाए।

१८३० में इंग्लैंड की अवस्था बड़ी खराब थी। चारों ओर क्रान्ति मची हुई थी। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में सशस्त्र मनुष्यों की टुकड़ियाँ केण्ट से आकर लंडन में घूमने लगीं और सातवीं तारीख़ को एक बड़ा मजमा अपने झण्डे उड़ाता और 'मार्सेल्स' नामक गीत गाता हुआ तमाम शहर में घूमा। उस दिन डर से रास्ता चलना कठिन हो गया; दूकानें भी बन्द हो गईं। बैंक ने बलवाइयों की संख्या बढ़ते देखकर रक्षा की तैयारी की. मेशीनगनें लगा दी गईं। बन्दूकें और रिवालवर इकट्ठा किये गये। छर्रे जब कहीं न मिले तो दवातें गलाकर ढाली गईं। सब क्लर्क बैंक में ही रहे। फाटक मजबूती से बन्द कर लिए गए।

बलवाइयों ने आक्रमण तो अवश्य किया किन्तु पहले ही से तैयारी होने के कारण बैंक की वे कुछ भी हानि न कर सके। सशस्त्र घुड़सवारों ने उन्हें छिन्न भिन्न करके खदेड़ दिया।

बैंक के ऊपर सबसे बड़ी विपत्ति १७८० ई० में 'गार्डन रायट' के समय पड़ी थी। उस समय बलवाइयों ने जेल तोड़ कर हजारों कैदियों को छोड़ दिया और एक छूटे हुए मजमे ने बैंक पर भी आक्रमण किया किन्तु तोप के गोले और बन्दूकों की बौछार से वे तितर बितर हो गये। संभल कर उन्होंने दूसरी बार फिर आक्रमण किया किन्तु दूसरी बार भी बेतरह घायल हो कर उन्हें भागना पड़ा। इस प्रकार यह विपत्ति भी दूर हुई।

१८८४ ई० में 'लण्डनर्स' 'ऐंगर' और 'टेरर' नाम के दो दलों में बँट गये। फिनियन्स ने पापपूर्ण षडयंत्र रचे और विक्टोरिया स्टेशन, स्काटलैण्डयार्ड, लण्डन ब्रिज और नेलसन स्मारक को विध्वंस करने की भी उन्होंने चेष्टा की।

उन्होंने 'लोमैसनी' नाम के एक आदमी को बीस पौंड (दससेर) बारूद देकर बैंक में रख आने को रवाना किया उसके सामने ही 'फ्लेमिङ्ग' (Flaming)नाम का दूसरा आदमी सेण्टपाल चर्च को रवाना हुआ। लोमैसनी से कहा गया गया कि जब सेण्टपाल के उड़ने की आवाज हो। तो तुम भी बारूद में आग लगा देना किन्तु फ्लेमिङ्ग पर किसी तरह सेण्टपाल के अधिकारियों का सन्देह हो गया और वह पकड़ लिया गया। इस तरह दोनों ही बच गये।

बैंक के जीवन में ऐसी अनेक अद्भुत बातें हुई हैं।

हां, एक बात कहनी छूट गई। ज्योंही कोई आदमी बैंक में क़दम रखता है, चार जोड़ी आंखें उसकी जाँच किया करती हैं किन्तु उसे ज़रा भी खबर नहीं होती। बैंक में चार ऐसी गुप्त जगहें रहती हैं जहाँ से बैंक और विशेष खजानों का सारा हिस्सा साफ २ दिखाई देता है। इन्हीं जगहों में बैंक के चार बुद्धिमान अभिभावक बैठ कर सब की जाँच किया करते हैं। बैंक में प्रवेश करने वाला कोई आदमी उन्हें देख नहीं सकता किन्तु वे सब को अक्सी शीशे के सहारे देख सकते हैं। जब से कोई मनुष्य बैंक के अन्दर पैर रखता है, तब से लेकर जब तक वह बाहर नहीं हो जाता तब तक उसके प्रत्येक परिवर्तन, चाल ढाल, हिलने डुलने की क्रियाओं को ये चारों ध्यान से देखा करते हैं। ऐसी अवस्था में चोरी करने का मौक़ा ही किसे मिल सकता है?

उफान

सुनो, ज़रा ये चरण बढ़ा दो, धो दूं इन्हें आंसुओं से,
मिलने की उत्कण्ठा है—अब खोजूं किन्हें आंसुओं से ?
त्राण करो; म्रियमाण करो, मैं तो हूँ पूजक पांवों का,
देखो कितना तुच्छ मूल्य है प्राणों के इन दांवों का !
वीचि-तरङ्गें इस मानस में उठती हैं, शीतल है गात,
रोती हैं आंसू की लड़ियां, घड़ियां गिनती हैं दिन रात,
हरो हृदय की पीड़ा, अब तो लज्जा की क्रीड़ा न करो,
तरणी यह तट पर आई है—वक्षस्थल में चरण धरो,
गीता पढ़ पढ़ रीता ही रहता हूं—ढूँढ़ूँ शान्ति कहां ?

* * * * *

तुम हो यहां, हृदय सूना, है बसी हुई उद्भ्रान्ति वहां।

—"नवीन"

जापान और अमेरिका।

अगर इस बात की जरूरत आ पड़े कि बर्रों के छत्ते में हाथ डाला जाय, तब तो हर एक इस बात के लिये तैयार हो जायगा; परन्तु ख़ामख़ा के लिये कोई बर्रों को नहीं छेड़ता। छेड़ने वालों को इस बात का बिश्वास होता है कि बर्रों के डंक होते हैं और ये डंक मार सकती हैं, साथ ही वे यह भी जानते हैं कि डंक में ज़हर होता है जिससे तबीयत तिल-मिला उठती है। परन्तु जिन मक्खियों के डंक नहीं होता उन्हें मारने में कोई आगा पीछा नहीं करता। अमेरिका बर्रों के छत्ते में हाथ डालना चाहता था। पर बहुत दिनों से हिचक रहा था। वह चाहता था कि कोई ऐसा क़ानून बना दिया जाय जिससे कि जापानी लोग अमेरिका में घुसने न पावें; परन्तु म्याऊं का ठौर पकड़ने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। एक हम हैं जिन्हें सब लोग दुरदुरा देते हैं। कोई जरा भी परवा नही करता इस बात की कि हम मनुष्य हैं। ब्रिटिश साम्राज्य ने हमारे साथ जो कुछ सुलूक किया सो किया ही,—दुनिया

के अन्य राष्ट्र भी हमें आँख दिखाने में अपनी शान समझते हैं । उन्हें विश्वास है कि हम डंक नहीं मार सकते । इसीलिये उनकी हिम्मत बढ़ी हुई है।

भारतवासी ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों की उस जघन्य नीति से अच्छी तरह परिचित हैं जिसके कारण वे उपनिवेशों में सम्मान पूर्वक रह नहीं पाते और साथ ही उन उपनिवेशों में घुसने नहीं दिये जाते। बाहरी देशों से किसी एक देश में अन्य देशीयों के आगमन को अंग्रेजी में Immigration (इमीग्रेशन) कहते हैं। केनिया, युगाण्डा, टांगान्यिका, झांझीबार, साउथ आफ्रिका, केनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलेंड, ब्रिटिश गायना आदि ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतवासी घुस नहीं पाते। वे वहां केवल एक शर्त पर (आवश्यकतानुसार) जा सकते हैं—कुली या क्रीत दास बनकर! पाठकों को मालूम होना चाहिये कि जिस प्रकार इन देशों में व्यापार की उन्नति के साथ साथ मजदूरों की आवश्यकता अनुभव हुई उसी प्रकार अमेरिकन राष्ट्र की लम्बी चौड़ी रत्नगर्भा भूमि को "सजलां सुफलां खनिज विभूषिताम्" बनाने के लिये अमेरिका को श्रमजीवियों की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। चीन, जापान, तथा यूरोपीय राष्ट्रों से कई मजदूर प्रति वर्ष अमेरिका में जाकर बसने लगे थे। मजदूरों तथा एशियाई महाद्वीप के लोगों की वृद्धि को देखकर अमेरिकानिवासी चिन्तित हुए और उन्होंने यह उचित समझा कि बाहरी देशों के निवासियों के अमेरिका-आगमन का नियन्त्रण किया जाय। इसी भावना की प्रेरणा ने अमेरिका में आगमन-सम्बन्धी-नीति (Immigration Policy) को प्रादुर्भूत किया । अभी हाल में अमेरिका ने जिस नवीन आगमन-सम्बन्धी क़ानून की सृष्टि की है उसके पहले भी एक क़ानून इस विषय के मामलों को निपटाने के लिये बनाया गया था। अमेरिका-प्रवेशसम्बन्धी उस नियम की सृष्टि गत शताब्दी के अन्तिम भाग में हुई थी । उसमें समय समय पर परिवर्त्तन भी होते रहे थे। उस नियम के अनुसार यह निश्चय कर दिया गया था कि यूरोपीय महाद्वीप के अमुक अमुक देशों से एक ख़ास निश्चित जनसंख्या अमेरिका में प्रवेश कर सकती है। जहाज़ी कम्पनियां तथा अमेरिकन पूंजीपतियों ने आगन्तुक परदेशियों से कैसे कैसे फायदे उठाए और उनको अपने अपने देशों से, झाँसा देकर, किस तरह अमेरिका ले गए यह इतिहास की बात है। जब समय आएगा तब इस विषय में हम कुछ कहेंगे। फिलहाल हम यह दिखाने की चेष्टा करेंगे कि गत प्रवेश सम्बन्धी कानून की धारा के अनुसार किस यूरोपीय देश से कितने आगन्तुक अमेरिका में जाकर बस सकते थे और नए कानून के अनुसार कितने आदमी किन किन देशों से जा सकते हैं। यह बात निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट रूप से प्रकट हो जायगी।

देश से	पुराने कानून के अनुसार अमेरिका जा सकनेवालों की संख्या	नए कानून के अनुसार अमेरिका जा सकनेवालों की संख्या
(१) ग्रेट ब्रिटन और आयरलेण्ड से ...	७७,३४२	६२,५५८
(२) जर्मनी से	६७,६०७	५०,२२९
(३) इटली से	४२,०५७	३,९८९
(४) पोलेण्ड से	३०,९७९	८,९७२
(५) रशिया से	२४,४०५	१,८९२
(६) स्वीडन से	२०,०४२	९,६६१
(७) जेकोस्लोवाकिया से	१४,३५७	१,९७३
(८) नारवे से	१२,२०५	६,५५३

(९) रूमानिया से	... ...	७,४१९	... ...	७३१
(१०) आस्ट्रिया से	... ...	७,३४२	... ...	१,०९०
(११) जुगोस्लाविया से	... ...	६,४२६	... ...	८३५
(१२) हङ्गरी से	... ...	५,७४७	... ...	५८८
(१३) फ्रान्स से	... ...	५,७२९	... ...	३,९७८
(१४) डेनमार्क से	... ...	५,६१९	... ...	२,८८२
(१५) फ़िनलेण्ड से	... ...	३,९२१	... ...	२४५
(१६) स्विटज़रलेण्ड से	... ...	३,७५२	... ...	२,१८१
(१७) नीडरलेण्ड से	... ...	३,६०२	... ...	१,७३७
(१८) ग्रीस से	... ...	३,०६३	... ...	१३५
(१९) टर्की से	... ...	२,६५४	... ...	१२३
(२०) लिथुआनिया से	... ...	२,६२२	... ...	४०२
(२१) पोर्चुगाल से	... ...	२,४६५	... ...	५७४
(२२) बेलजियम से	... ...	१,५६३	... ...	६०९
(२३) लटविया से	... ...	१,५४०	... ...	२१७
(२४) इस्थोनिया से	... ...	१,३४८	... ...	२०२

ऊपर की तालिका से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि नवीन आगमन सम्बन्धी नियम के कारण बहुत काफी उथलपुथल मची है। जिन देशों से पहले हजारों की तादाद में आगन्तुक आकर अमेरिका में बसते थे उन देशों से अब कुछ हज़ार या कुछ सौ आगन्तुक अमेरिका आ पा सकेंगे। इटली से अभी तक ४२ हजार आदमी आ सकते थे। परन्तु नए कानून के मुताबिक अब ४ हजार से भी कम आदमी अमेरिका आ सकेंगे। इसी प्रकार रूस से करीब २४,५०० लोग अमेरिका में आकर बस सकते थे। नए कानून में इस संख्या को घटा कर १८९२ तक कर दी है। पोलेण्ड के ३१ हजार निवासियों को अमेरिका आने की इजाजत थी। नए कानून के मुताबिक वहाँ से अब ८९७२ से अधिक आगन्तुक अमेरिका में न बस सकेंगे। यह तो हुआ नवीन अमेरिका-आगमन कानून का संक्षिप्त परिचय। अब हमें यह देखना चाहिये कि इस नवीन कानून से जापानी लोग क्यों चिढ़े हैं? उसका एक कारण है—और वह कारण ऐसा महान है कि कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र बिना चिढ़े नहीं रह सकता। अमेरिकन सीनेट ने जिस नए कानून को पास किया है उसमें एक उपनियम यह भी है कि कोई भी एशिया महाद्वीप का निवासी अमेरिका में आकर नहीं बस सकता। उसी कानून में एक धारा इस आशय की भी है कि प्रोफेसरों, विद्यार्थियों, ललित कला विशारदों तथा राज मन्त्रियों के अलावा और कोई भी आदमी अमेरिका में नहीं घुसने पावेगा। इस अपमानसूचक धारा के कारण जापानी लोग चिढ़ गए हैं। यदि अमेरिका चाहता तो इसी बात को खूबसूरती से कर सकता था। वह आगन्तुक जापानी लोगों की संख्या उसी प्रकार नियत कर देता जिस प्रकार कि उसने अन्य युरोपीय देशों से आने वाले लोगों की संख्या नियत कर दी है। पर अमेरिका ने नवीन विधान में इस प्रकार की थोड़ी गलती करके अपनी मूर्खता का परिचय दे ही दिया। यह बात बिलकुल भ्रमपूर्ण ही है कि जापानी लोग बहुत बड़ी संख्या में अमेरिका आते हैं। कुछ वर्ष पहले—हम ठीक ठीक सन् नहीं जानते—जापान और अमेरिका में एक समझौता हो गया था उस समझौते का नाम जेन्टलमेन्स एग्रीमेण्ट (Gentlemen's Agreement) या "सभ्यों का

समझौता" है। इस समझौते की तीन मुख्य शर्तें थीं। पहली शर्त्त तो यह थी कि जापान अपने यहां से किसी श्रमजीवी को अमेरिका के मेक्सिको या केनेडा देश में जाने के लिये पासपोर्ट न देगा। दूसरी शर्त यह थी कि यदि किसी श्रमजीवी के पास महाद्वीपान्तर्गत संयुक्त राष्ट्र का पासपोर्ट न होगा तो संयुक्त राष्ट्र उस श्रमजीवी को अपने यहां न घुसने देगा। तीसरी शर्त्त यह थी कि जापान अमेरिका जाने के लिये केवल ऐसे लोगों को पासपोर्ट देगा जो श्रमजीवी नहीं होंगे अथवा यदि श्रमजीवी होंगे तो वे ऐसे आदमियों में से होंगे जिन्होंने अमेरिका में नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर लिये हैं। "सभ्यों के समझौते" की इन शर्तों के रहते हुए भी अमेरिकन सरकार ने व्यर्थ के लिये जापानी लोगों से क्यों बैर मोल लिया? हमें इसका सिर्फ एक ही उत्तर ध्यान में आता है। वह यह कि अमेरिका को अपने बल का मद हो गया है। वह चाहता है कि अमेरिका में पीले चमड़ेवाले या भूरे चमड़ेवाले आकर न बसें। और यदि अमेरिका ऐसा चाहता है तो उसे कौन रोक सकता है कि वह ऐसा न करे। उसके पास बल है उसके पास रुपया है। संसार में उसकी धाक है। परन्तु उसे याद रखना चाहिये कि जापानी या एशियावासी वह गुड़ नहीं हैं जिसे चींटे खा जायं। तरजनी को देखकर मुरझा जाने के दिन अब लद गए। अमेरिकन साम्राज्यवाद यदि आज अपनी शक्ति के मद में मस्त होकर संसार के अन्य सबल या निर्बल देशों के साथ अन्याय और अत्याचार कर रहा है तो आगामी कल की गोद में एक अदृष्ट शक्ति बैठी हुई "महानाश" का मन्त्र जप रही है। लातहु मारे शिर चढ़े नीच को धूरि समान"—फिर एशियावासी तो "धूरि" नहीं हैं। उनके दिल है, दिमाग़ है, और कह सकते हैं बल भी है। कमज़ाकम जापान में वह शक्ति ज़रूर है जो अमेरिका को छका सके।

किसी भी देश के आन्तरिक शासन सम्बन्धी नियमों में किसी अन्य देश को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। परन्तु यदि उन नियमों में कोई बात ऐसी हो जिसका असर अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों पर पड़ता हो तो उस राष्ट्र का, जिसका कि उस नियम से सम्बन्ध है विरोध न्याययुक्त हो जाता है। इस समय जापान में नई सरकार के हाथ में शासन-सूत्र आने को है। नए शासक अमेरिका के इस नए लज्जाजनक क़ानून का प्रतीकार कैसे करेंगे यह तो समय ही बतलावेगा—परन्तु हम धन्यवाद देंगे जगत्सूत्र सञ्चालक को यदि इस छोटी सी पर महत्वपूर्ण बातकी बदौलत प्रशान्त महासागर में समर की प्रचंड अग्नि प्रज्वलित न हो उठे। जापान का खून उबल रहा है। वहां नित्य प्रति अमेरिका और अमेरिकनों के खिलाफ प्रदर्शन और सभाएं हो रही हैं। एक जापानी ने आत्महत्या करके अमेरिका के इस कृत्य का तीव्र विरोध किया है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जापान तथा अमेरिका के शासक शान्त चित्त होकर परिस्थिति पर विचार करें और यदि अमेरिका के शासक यह उचित समझें तो आगमन नियमों में उचित परिवर्तन कर दें। अमेरिका को यह शोभा नहीं देता कि एक ओर तो वह विश्व-प्रेम के गीत गावे और दूसरी ओर एशिया महाद्वीप के निवासियों को अपने यहाँ घुसने न दे। रक्त शुद्धिवाली बात एक बहुत खोखली और मूर्खतापूर्ण दलील है। उसके बल पर मनुष्यता में विभाजन न होना चाहिये।

टर्की।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि मनुष्य गलतियाँ करके अकलमन्द होता है। हमारे यहाँ भी कहते हैं "बावन ठोकर खाए—तब बावन वीर कहाए।" नए राष्ट्र गलतियां करके ही सीखते हैं। जिन राष्ट्रों के सिर पर उत्तरदायित्व और पुनः संगठन का बोझ पड़ता है वही जानते हैं कि विधायक कार्य्यक्रम कैसा शुष्क, नीरस, उकता देनेवाला, किन्तु, कितना आवश्यक होता है। तलवार की विजय के उपरान्त मेमार की कन्नी की सदा जरूरत रहती है। मुस्तफा कमाल-

पाशा ने अपने भुजबल से यूरोपीय राष्ट्रों को नीचा दिखा कर टर्की को पुनर्वार सङ्गठित और सुसज्जित करने में जिस तेजी और सफलता से काम किया है वह प्रशंसनीय है। अमेरिकन, स्विस, जर्मन, ब्रिटिश आदि व्यापारिक कम्पनियों से टर्की के नष्ट भ्रष्ट भाग को बनाकर ठीक कराने का प्रबन्ध करना, रेलवे, बिजलीघर, सड़क, शहर आदि स्थानों तथा बन्दरगाहों की मरम्मत के लिये प्रयत्न करना और साथ ही अन्तरराष्ट्रीय जगत में टर्की की शान और शौकत को अक्षुण्ण रखना कितनी जागरूकता का काम है, यह वे ही अनुभव कर सकते हैं जिन्होंने राष्ट्रों के भाग्य को कभी पलटा हो या जो कभी राष्ट्रों के आड़े वक्त पर अपना सब कुछ लेकर आगे बढ़े हों। टर्किश राष्ट्र के सामने कितना महान कार्य्य है इसका जरा अन्दाज़ तो लगाइये। एक ओर कान्स्टेंटिनोपल का नगर है जहाँ कई मकानात जल कर राख हो गए हैं। दूसरी ओर इजमिद की खाड़ी के दक्षिणी भाग का कुछ हिस्सा है जहाँ नाशक युद्ध की छाया पड़ रही है। मारमोरा समुद्र के पूर्वी तट के भूभाग की अवस्था भी अस्तव्यस्त हो रही है। तीसरी ओर एशिया माइनर का पश्चिमी भाग है, इस भाग को ग्रीक लोगों ने भागते भागते किस पाशविक बर्बरता के साथ विध्वंस किया था इसका वर्णन कई बार किया जा चुका है। स्मर्ना मिट्टी में मिला हुआ है; कटाकिया और एस्कीशाकिर भस्मीभूत हैं; और पर्वीय अनाटोलिया का भूभाग नष्टप्राय पड़ा हुआ है। इतना ही बस नहीं है। ब्लेक सी (कालेसागर) के तट पर कई ऐसे स्थान हैं जिन पर लड़ाई के समय ग्रीक लोगों ने गोले बरसाए थे। उनकी मरम्मत होने की भी जरूरत है फिर बालकन युद्ध होने के बाद से आज तक पूर्वीय थ्रेस उसी नष्टमान अवस्था में पड़ा हुआ है। टर्की के विध्वंस में स्मर्ना और ब्रूसा की विलायत के अलावा कई ऐसे स्थान हैं जिनके पुनः सङ्गठन के बिना टर्की उन्नत नहीं हो सकता। इतना सङ्गठन कार्य सामने होते हुए भी मुस्तफ़ा कमाल और उसके साथी बड़ी धीरता और वीरता से इस काम को करते जा रहे हैं। वे गलतियां करते हैं। अभी खबर आई थी कि टर्की ने शराबखोरी बन्द कर दी। फिर जब आमदनी में कमी हुई तो फिर शराब का बेचा जाना आवश्यक ठहराया गया इस प्रकार की जल्दबाजी अनुभव की द्योतक है, परन्तु अनुभव और बुद्धिमत्ता तक पहुंचने का मार्ग यही है।

यूरोपीय परिस्थिति।

फ्रान्स—

यूरोप—वह यूरोप जो कुछ दिन पहले पाँकारे की तलवार से सहमा हुआ था, आज कुछ प्रसन्न है। आज पाँकारे फ्रान्स का शासक और यूरोप का शाहन्शाह नहीं। आज वह एक मामूली आदमी है। उसके स्थान पर आज मोसिए हेरियट फ्रान्स के महामंत्री हैं। हम गत मास की प्रभा में यह कह चुके हैं कि पाँकारे के हारने से यूरोप की राजनैतिक परिस्थिति में बहुत कुछ अन्तर आ जायगा। अब हम देखते हैं कि वह अन्तर स्पष्टतया दिखलाई पड़ रहा है। फ्रांस की जनता ने बरसों तक पाँकारे की उद्दण्डता और एकायत्त शासन स्वेच्छाचरिता का उपभोग किया। हम मन ही मन यह सोच रहे थे कि क्या सचमुच फ्रांस की जनता इतनी क्रूर है कि उसकी भावनाओं का प्रस्फोट पाँकारे के ज्वलन्त शब्दों के ही द्वारा हो सकता है? राबर्ट लुई स्टीवेन्सन के शब्द हमें याद आते थे। हम सोचते थे कि क्या फ्रांस ने इसी दिन के लिये 93' का नाटक रचा था? जिस समय इस प्रकार के संशय हमारे हृदय में उठा करते थे उस समय हम यह भी सोचते थे कि हो न हो पाँकारे फ्रांस की औषध नहीं व्याधि हैं। हमारी यह शंका सच निकली। जिस समय फ्रांस की जनता को मौका मिला कि वह अपनी आन्तरिक इच्छा को प्रकट करे, उसी समय उसने पाँकारे और उनके पिछलगुओं को धता बता दी। इसमें सन्देह नहीं कि नए महामन्त्री मोसिए हेरियट ने अपनी वैदेशिक नीति को परि-

वर्त्तित न करने और रूर प्रान्त से फ्रांस की फ़ौज न हटाने की बात कही है; परन्तु हम इतना ज़रूर समझते हैं कि हेरियट दल उतना प्रतीकारवादी नहीं है जितना कि पाँकारे दल था।

हेरियट महामंत्री अपनी चुनाव प्रतिज्ञा के कारण वचनबद्ध हो चुके हैं कि वे क्षतिपूर्त्ति के विषय की नई रिपोर्टों के अनुसार ही क्षतिपूर्त्ति के सम्बन्ध में काम करें। पाँकारे दल तो इस बात के लिये प्रतिज्ञा बद्ध भी नहीं था। हम डावेस रिपोर्ट को सर्वाङ्ग-पूर्ण रिपोट नहीं समझते। फिर भी बरसों की उलझन के बाद इस रिपोर्ट ने एक ऐसा रास्ता दिखलाया है जिसके मुताबिक काम करने से क्षतिपूर्ति की जटिल समस्या कुछ सरल अवश्य हो जाती है। गत मास की प्रभा में हमने कहा था "हमें भय है कि पाँकारे महाशय के जाने पर भी फ्रांस की वैदेशिक नीति में परिवर्त्तन न होगा। यह परिवर्त्तन मेकडानेल्ड करा सकते हैं। अपनी इच्छा से फ्रांस शायद ही परिवर्त्तन करे।" हम आज भी उन्हीं शब्दों को दोहराते हैं। परन्तु आज दोहराते समय हम इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि फ्रांस, नहीं यूरोप, मेकडानेल्ड के नेतृत्व में, (हमें विश्वास है) कोई ऐसा मार्ग ढूंढ़ निकालेगा जिससे होकर सारी फ्रेंच सेना रूर प्रान्त से वापिस आ सकेगी।

ग्रेटब्रिटेन।

मज़दूर मन्त्रिमण्डल अभी तक अत्यन्त सफलता पूर्वक अपना, ग्रेट ब्रिटेन तथा साम्राज्य का शासन करता चला जा रहा है। मिस्टर फिलिपस्नोडन ने ब्रिटिश राष्ट्र के आयव्यय का चिट्ठा जिस बुद्धिमत्ता से तैयार किया और उसे वह जितनी खूबसूरती से पार्लियामेन्ट से पार कर ले गए इसे देख कर मिस्टर स्नोडन की बुद्धिमत्ता का कायल होना पड़ता है। अनुदार दलवालों ने मज़दूर सरकार पर निन्दा सूचक प्रस्ताव भी पेश किया था। परन्तु इस दकियानूसी दल का दकियानूसी प्रस्ताव गिर गया। प्रस्ताव के पक्ष में २५२ वोट आए परन्तु प्रस्ताव के विपक्ष में ३१७ वोट थे। इससे सिद्ध होता है कि ग्रेट-ब्रिटेन का शासकमंडल अभी मजबूत है। मिस्टर मेकडानेल्ड ने फ्रान्स के तत्कालीन प्रधान मन्त्री को जो दो पत्र लिखे थे उन्हें पाठक शायद न भूले होंगे। उन पत्रों में मेकडानेल्ड ने जिस शान्ति, निर्भीकता और विचारशीलता का परिचय दिया था उसका असर फ्रान्स के चुनाव पर भी पड़ा। फ्रान्स में पांकारेदल की हार और उदार दल की विजय का एक प्रबल कारण मेकडानेल्ड की शान्तिमयी नीति है। केवल बातों ही से नहीं, परन्तु सिंगापुर नौसेना केन्द्र के प्रस्ताव को रद्द करके कार्य्यों से भी ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने शांतिमयी नीति का परिचय दिया है। इन्हीं कारणों से हम कह सकते हैं कि आज यूरोप में शान्ति स्थापन की संभावना कहीं अधिक अंशों में विद्यमान है।

जर्मनी—

जर्मनी की दशा भी आशाजनक प्रतीत होती है। जर्मनी में आर्थिक कष्ट जरूर है। परन्तु जर्मनी के नए सिक्के रेन्टनमार्क के कारण उस देश की आर्थिक दशा बहुत कुछ सम्हली हुई है। जर्मनी का गत चुनाव भी आशाजनक है। जैसा कि हम कह चुके हैं पांकारे डावेस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के मुताबिक काम नहीं करना चाहते थे। परन्तु उनके उत्तराधिकारी मोसिए हेरियट वचनबद्ध हैं ऐसा करने के लिये। क्षतिपूर्ति प्रश्न सम्बन्धी डावेस रिपोर्ट आदर्श रिपोर्ट नहीं है; परन्तु जो कुछ भी है, फिलहाल तो ग़नीमत है। इस समय यदि मेकडानेल्ड और हेरियट योग्यतापूर्वक यूरोप का सूत्र संचालन करेंगे तो इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि मध्ययूरोप में आर्थिक विक्षिप्तता का शीघ्र ही लोप हो जायगा। फ्रान्स की सैनिक मूर्खता और दमननीति का फल यह हुआ है कि "जर्मनी में जर्मन राष्ट्रवादी" और "जर्मन सेनावादी" दल का जन्म हो गया है। ये दल शान्ति के स्थान पर अशान्ति और जन-सत्ता के स्थान पर एकायत्त शासन स्थापित करना

चाहते हैं। यदि मेकडानेल्ड हार्दिक शान्ति की भावना का प्रदर्शन एवं तदनुकूल कार्य्य कर सके तो जर्मनी का यह प्रतिक्रियावादीदल अपने मुंह की खाकर पड़ा रह जायगा। ऐसा होने पर यूरोप में शान्ति होगी और साथ ही होगी एकायत्त शासन से जर्मन जनतन्त्र की रक्षा।

इस उपर्युक्त विहंगावलोकन से यह स्पष्ट है कि कि वर्त्तमान समय यूरोपीय शान्तिस्थापन के लिये एक अचूक अवसर है। क्या मेकडानेल्ड और हेरियट इस समय को हाथ से जाने देंगे? सावधान! कहीं अन्त में यह न कहना पड़े कि "अब पछताए होत का जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।"

एशिया महाद्वीप की गोद में

इराक—

इराक या मेसोपाटामियां का नाम पाठक सुन चुके हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के सूत्रधारी ने मेसोपोटामियां के साथ जैसा घृणित विश्वासघात किया है उसके पुनर्बार दोहराने की जरूरत नहीं है। गत मास की प्रभा में हम इस विषय पर बहुत कुछ लिख चुके हैं (देखिये प्रभा जून पृष्ठ ४७८—७९) इस महीने में इराक और ग्रेट ब्रिटेन के बीच सन्धि हो गई है। जिस समय विन्स्टनचर्चिल के गुड्डे राजा फैजुल जबर्दस्ती मेसोपोटामिया के नरेश बनाए गए थे उस समय चर्चिल ने १९२१ ईस्वी की १४ वीं जून को पार्लियामेंट में भाषण देते हुए कहा था कि हमारी वैदेशिक नीति का उद्देश है: To reduce our commitments and extricate ourselves from our burdence, while at the same time discharging our ohiigations and building up an effective Arab Government which would always be the friend of Britain. मिस्टर चर्चिल की राय में तत्कालीन ब्रिटिश शासकमंडल की नीति यह थी कि "ग्रेट ब्रिटेन अपने बाहरी उत्तरदायित्व को कम करता चले और अपने बोझ को हल करता चले, पर साथही एक ऐसी सशक्त अरब शासन पद्धति की सृष्टि भी करता चले जो सदा ग्रेट ब्रिटेन की मित्र बनी रहे।" बात अन्तिम उद्देश में साफ हो जाती है। ग्रेटब्रिटेन टर्की को नष्टभ्रष्ट करने का इरादा रखता था, कारण कि अब टर्की एशिया का विपक्षी नहीं था। इसी लिये मिस्टर चर्चिल ने अपने गुड्डे को वहां बिठला दिया था। आज ग्रेटब्रिटेन और इराक के बीच जो सन्धि हुई है उसकी आरम्भिक ध्वनि चर्चिल के गुड्डे राजा फैजुल की उस स्पीच में सुन पड़ती है जो उसने इराक के सिंहासन पर आरूढ़ होते समय दी थी। फैजुल साहब ने फर्माया था:—

My first task will be to proceed with the elections and the convocation of the consti tuent Assembly. The nation Should understand that it is this Congress that will, in consultation with me, draw up the constitution of its independence, on the basis if democratic Govetnment............ Finally it ivile conform the treaty which I shall lay before it in regard to the relations which are to Glist between our Government and the great British Government.

इसका भावार्थ यह है कि राजा फैजुल साहब लोगों से पहल चुनाव करने का अनुरोध करते हैं। उसके बाद देश की शासनपद्धति के निश्चय करने पर वे जोर देते हैं। तदनन्तर वे कहते हैं कि चुनाव के बाद जिस जनसभा की सृष्टि होगी वह जनसभा उस सन्धि को स्वीकार करेगी जिसको मैं जनसभा के सामने रक्खूंगा। इस सन्धि में ग्रेटब्रिटेन और इराक के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण रहेगा।' राजा साहब ने जिस सन्धि का जिक्र किया वह शायद वही सन्धि है जिसने इराक में एक तूफान खड़ा कर दिया है। इराक निवासी कहते हैं कि इस सन्धि में एक

ऐसी शर्त है जिसे हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते। इस सन्धि में एक शर्त यह है कि इराक को मजबूरन कुछ अंग्रेज अफसर नौकर रखना पड़ेंगे। मेसोपोटामियाँ में इस सन्धि पर बहुत कुछ लिखा और कहा गया। अभी तक सन्धि की अन्य शर्तें प्रकाशित नहीं हुई हैं! परन्तु बाद की कुछ खबरें ऐसी आई हैं जिनसे पता चलता है सन्धिपत्र पर दस्तखत हो गए। मालूम होता है ग्रेटब्रिटेन के मजदूर-मन्त्रिमण्डल ने सन्धि की शर्तों में कुछ परिवर्त्तन कर दिया है।

तिब्बत : राजा महेन्द्रप्रताप की चेतावनी।

हमने कई बार ब्रिटिश औपनिवेशिक विस्तार की कड़ी आलोचना की है। ब्रिटिश उपनिवेश-विस्तार के कट्टर शत्रु होते हुए भी हम एक बात अवश्य कहेंगे:—वह बात यह है कि ग्रेटब्रिटेन के राजनीतिज्ञ ऐसे बैठकबाज होते हैं कि उनकी चतुरता की तारीफ करने को जी चाहता है। पाठक जानते होंगे कि कुछ वर्ष पहले लार्ड कर्जन ने कश्मीर राज्य को हड़प कर "कर्जन कलनी" (कर्जनिया उपनिवेश) बनाने की युक्ति निकाली थी। परन्तु बुरा हो गिद्ध-दृष्टि अमृतबाजारपत्रिका का जिसने कि भारतवर्ष के एक राज्य को मालिकों के दातों तले से निकाल लिया। अब हम देखते हैं कि अंग्रेज लोग तिब्बत पर भी धीरे धीरे दांत लगा रहे हैं। भारतवर्ष को इस मामले में अधिक सचेत रहना चाहिये। राजा महेन्द्रप्रताप ने "प्रताप" सम्पादक के पास एक पत्र भेजा था। उस पत्र में भी इसी भाव का उल्लेख किया गया है। धीरे धीरे अंग्रेज लोग तिब्बत को कहीं "क्राउन कलनी" न बनाने पावें इस बात का हम लोगों को प्रयत्न करना चाहिये। हम नीचे राजा साहब का पत्र ज्यों का त्यों देते हैं। पाठक पत्र पढ़ कर इस विषय की गुरुता को अनुभव कर सकेंगे इसमें सन्देह नहीं:—

बाग़ बाबर, काबुल ३ जून १९२४

कल परसों ही मैंने सुना है कि पीकिन (चीन की राजधानी) से मोस्को (रूस) द्वारा वहां एक बेतार का समाचार पहुंचा है कि शिगत्सी के त्शाई लामा अंग्रेजों के अधिक मित्र थे इसलिए श्रीमान दलाई लामा और लासा की सरकार उनके विरुद्ध हो गई इस कारण त्शाई लामा भाग कर हिन्दुस्थान चले गये। इसके पश्चात अंग्रेजों ने एक मिशन लासा भेजा। उसने लासा सरकार पर अपना इतना अधिकार जमा लिया है कि लासा की समस्त पुलिस का अफसर एक अंग्रेज नियत कर दिया गया है। परमात्मा जाने कि यह समाचार सत्य है अथवा झूँठी गप्प है। और यदि यह सच भी हो तो भी यह कुछ पुरानी खबर होनी चाहिये क्योंकि तिब्बत वा चीन के मध्य आज कल आने जाने अथवा पत्र-व्यवहार का सुभीता कमती ही है। जो भी हो। इस समाचार की सचाई अथवा झूंठ की जांच हमारे सब के लिये अति आवश्यक है। तिब्बत भारत का एक मुख्य पड़ोसी है। तिब्बत की सभ्यता भारतीय है! यदि अंग्रेज तिब्बत पर भी अधिकार जमा लें तो समझिये कि, हिन्दुस्तान के गले में एक और सांकल पड़ गई। साथ ही हमारे मित्र वा भाई नैपाल वा भूटान देशों को भी विशेष हानि है। वे तो फिर चारों ओर से अंग्रेजी मायाजाल में फंस जायंगे। यह जो हिन्दू सभ्यता के शुभचिन्तक बुद्धों के प्रति सहानुभूति दिखाया करते हैं। क्या उनकी सहानुभूति केवल शब्दों तक ही निर्भर है। यदि वे वास्तव में बुद्ध धर्म के मित्र हैं तो उन्हें कदापि अंग्रेजों के हाथ इस बुद्ध केन्द्र का अपमान नहीं होने देना चाहियें। मैं तो कहूंगा कि, 'इराक़' और 'तिब्बत' के विषय में सभी हिन्दुस्तानियों को मिल कर आन्दोलन उठाना चाहिए। इन दोनों देशों में अँग्रेजों का घुसना भारत के लिये अत्यन्त हानिकारक है, और मुसलमान, बुद्ध हिन्दुओं की सभ्यता पर आक्रमण है। यदि ऊपर लिखा समाचार अक्षरशः सच भी न हो तो भी यह तो हम सभी जानते हैं कि अंग्रेज तिब्बत के विषय

में क्या सोचते हैं। इसीलिए वे वहां अपना प्रभाव बढ़ा रहे हैं। यदि सीधे सादे भोले भाले तिब्बती भाई न समझें तो हमें उनकी विकट स्थिति उन्हें समझानी चाहिये। अत्यन्त आवश्यक है कि इस विषय को समाचारपत्रों में छेड़ा जाय। और शीघ्र ही हिन्दू सभा की ओर से उत्तरी स्थिति की देख भाल करने के लिये हिन्दू सभा का डेपुटेशन, नैपाल और लासा जाय। यदि सभा खोखली है और अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकती तो कुछ उत्साही व्यक्तियों को स्वयं ही इस कार्य को करना चाहिये।

आपका प्रेमी

म× प्रताप।
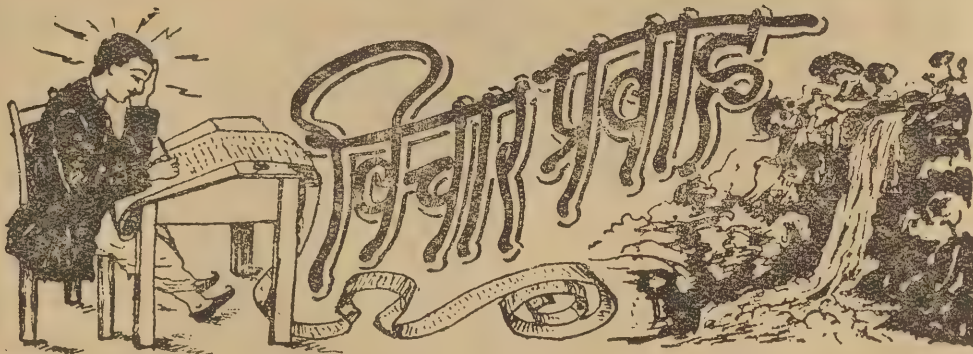
विप्लव के अग्निकुण्ड की चिनगारियां

वीर श्रेष्ठ श्री रासविहारी बोस की आत्मकथा

मैंने भारतवर्ष क्यों छोड़ा

[स्वतन्त्र भारत के इतिहास में वीर श्रेष्ठ श्री रासविहारी बोस की आत्मकथा का वही मूल्य है जो मेज़िनी की जीवनस्मृति का इटली के इतिहास में, प्रिन्स क्रापटकिन की आत्मकहानी का रूस के इतिहास में और डाक्टर सनयाटसेन के जीवन-इतिहास का चीन के इतिहास में। रासविहारी महाप्रलय के पूजक और महानाश के उपासक हैं। वे भगवान् की प्रलयंकरी प्रखर आभा के दर्शन के लिये उत्सुक हैं। उन्होंने अपनी जीवन घटना का वर्णन सहयोगी प्रवर्त्तक में लिखना प्रारम्भ किया है। हम प्रभा के पाठकों को उस लोमहर्षण, किन्तु अत्यन्त सहानुभूति तथा करुणा से पूर्ण, जीवन कथा का प्रथम खण्ड अर्पित करते हैं —

—प्रभा सम्पादक]

सन् १९१५ के मार्च का महीना था। उस समय मैं बनारस में आ गया था। लाहौर में की गई कोशिश के व्यर्थ हो जाने से बड़ा दुःख हुआ था; लेकिन जब सुना कि मेरे वे साथी पकड़े गये जो कि मेरे दाहिने हाथ थे तब तो मेरे दुःख की सीमा न रही। जितनी बार उस खबर को पढ़ता था, उतनी ही बार आंखों से आंसू बह निकलते थे। लाहौर में अकृतकार्य होने पर भी "Through failures we mount to success" इस मन्त्र पर मेरा दृढ़ विश्वास था; इस लिये मैं निराश नहीं हुआ था। यह Experience आगे काम आयेगा; आगे कभी ऐसी भूल नहीं करूँगा; यही सोचा करता था। लेकिन जो लोग परम स्वार्थत्यागी,

दुःसाहसिक, और सब विचारों में अचल अटल थे उन लोगों के पकड़े जाने पर बहुत धक्का पहुँचा था। जिन लोगों को फांसी हो जायगी वे तो फिर नहीं मिलेंगे—यह चिन्ता और आकुलता मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही थी। इस पर जब सुना कि पिङ्गले भी मेरट में पकड़ा गया तब तो मेरे प्राण से निकल गए। जब अखबार में देखा कि पिङ्गले और कई एक सिक्ख सिपाही 'बम' समेत पकड़े गये हैं, तब आंखों के आंसू रोके भी न रुके। अखबार पढ़ने के पहले सोचा था कि किसी प्रकार से यदि पिङ्गले लौट आवे तो अब उसे कभी छोड़ूंगा ही नहीं।

* * * *

इससे पहले की घटना है :—जिस समय लाहौर में पकड़ धकड़ जारी थी उस समय वहां रहना ठीक नहीं यह सोच कर बनारस या बंगाल में लौट जाना ही तै हुआ। एक मित्र ने कहा कि इस समय पुलिस सब ट्रेन देखा करती है, इस समय हम आपको नहीं छोड़ेंगे। मैंने कहा कि इस समय पुलिस की नज़र से लाहौर छोड़ देना बहुत सहज है। इससे पहले दिल्ली स्टेशन से भी पुलिस की नज़र से सहज में ही निकल आया था। पुलिस की बुद्धि कुछ मोटी है। जाते समय इधर उधर देखना नहीं चाहिये; लेकिन एक भद्र यात्री की तरह स्टेशन पर आकर बुकिंग आफिस से टिकट लेकर ट्रेन आने तक बेञ्च पर बैठ कर अखबार या किताब पढ़ते रहो पुलिस का बाप भी सन्देह नहीं कर सकता। इसके सिवाय जब कि पुलिस चारों ओर यात्रियों को देखती रहेगी तब उसका ध्यान बंटा रहेगा, और यही भाग निकलने का एक महा सुयोग है। अपने मित्र को यह बात समझा कर एक मरहठा लड़के के साथ शाम के वक्त लाहौर स्टेशन पर पहुंचा। पंजाबी पहनाव था, सिर पर एक बड़ा सा साफ़ा था और साथ में एक भरी हुई "मसा" की पिस्तौल थी। इक्के से उतर कर सीधे प्लेटफार्म पर पहुंचा; टिकट पहले से ले रक्खा था दो मिनिट में गाड़ी आ गई। दोनों सवार हो गये; उस लड़के से कह दिया कि सोने का बहाना करके पड़े रहो। गाड़ी छूट गई। गाड़ी छूटते समय देखा कि मेरा एक पुराना मित्र खड़ा है, और मुझे निरापद लाहौर छोड़ते देखकर बहुत खुश है।

* * * *

सबेरे गाजियाबाद में उतर कर गाड़ी बदली वहां मेरे एक परिचित सज्जन थे; लेकिन उन्होंने मुझे पहचाना नहीं। अगर पहचान जाते तो भी वे मेरे साथ कभी विश्वासघात न करते। दूसरे दिन मुगलसराय में गाड़ी बदल कर मैं बनारस पहुंचा। यहां भी पुलिस खूब सतर्क थी लेकिन मोटी बुद्धि होने के कारण वह दूसरों पर सन्देह करती थी। मैं यूँहीं बचा रहता था। उस समय तक पिंगले की कोई खबर नहीं मिली थी, इसलिये बड़ी चिन्ता थी। ठीक दो रोज़ बाद पिंगले आ गया। उसे देख कर बहुत ही आनन्द हुआ। वह मेरट में सिपाहियों से परामर्श कर आया था, मेरा हुकुम पाते ही वह वहां जाकर काम शुरू कर देगा। जिसको मैं अपने सहोदर से भी ज्यादा प्यार करता था, जिसको मैं अपना समझता था, जिसकी साहसिकता, स्वदेश-प्रेम और आत्मदान के भाव पर मैं मुग्ध था जिसकी सहायता बिना मैं एक पांव भी आगे नहीं बढ़ सकता था, उस प्यारे भाई शचीन्द्रनाथ को मैंने बुलवाया। उस समय शची घर में नहीं रहा करता था; क्योंकि वह किसी समय भी पकड़ा जा सकता था; इसलिये वह एक मित्र के यहां रहता था। शची के साथ परामर्श हुआ; एक ओर पिंगले के प्रति मेरा प्रेम और दूसरी ओर कर्त्तव्य था। यह मैं खूब समझता था कि पिंगले आग में कूद रहा है लेकिन दूसरी ओर कर्त्तव्य था। अन्त में पिंगले को भेजना ही तै हुआ!

* * * *

ठीक शाम का वक्त था। गंगा के तीर दशाश्वमेध घाट पर हम लोग बैठे थे। मन्दिरों में आर्ती आरम्भ हो गई थी। पिंगले से मैंने कहा कि "तुम जिस काम में जा रहे हो, उसमें कितना

विपद है यह तो जानते हो, ज़रा भी चूके कि बस मौत; क्या इस पर तुमने कुछ सोचा है?" पिंगले ने हंस कर कहा "मरना जीना नहीं जानता हूं जब order देंगे तब उसका पालन करूंगा ही चाहे कुछ हो; मरना हो मर जाऊँगा। वीरों का सा उत्तर था। उत्तर सुनते ही मैं काँप उठा। बहुतों को खो बैठा हूं; क्या फिर पिंगले को भी खोऊँगा? पिंगले दूसरे दिन मेरट गया; उसके साथ मेरा वही अन्तिम मिलना था। अभी तक उसका सहास मुख मेरे हृदय में अंकित है; पिंगले मनुष्य नहीं था देवता था। उसके ऐसे यदि दस हज़ार मनुष्य होते तो आज भारत स्वाधीन होता।

* * * *

आज १९२४ का साल है। आज भी जिस समय अमीचन्द, अवधविहारी, वसन्तकुमार, बालमुकुन्द, पिंगले कर्तारसिंह, मयूरसिंह, जगतसिंह, निधानसिंह इत्यादि अनेक वीरों की बात याद आती है तब नयन से धारा बह निकलती है। इसका क्या कारण है? वे लोग तो मेरे आत्मीय नहीं थे, फिर भी उन लोगों के लिये आज तक क्यों रोता हूं वे लोग आत्मीय से भी अधिक थे, सब मेरे प्राणसम भाई थे; इसलिये उनके लिये आज तक रोता हूं। उन लोगों की बात याद आने पर हृदय टुकड़े टुकड़े हो जाता है। विप्लवपन्थिओं में जो गम्भीर प्रेम होता है उसे साधारण लोग समझ नहीं सकते हैं। वह प्रेम अपने माँ, बाप, भाई बहिन से भी ज्यादा निकट की वस्तु होती है। ऐसा प्रेम न हो तो कोई कभी विप्लवपन्थी नहीं हो सकता है, और न कभी विप्लव मूलक कोई काम ही कर सकता है।

* * * *

पिंगले पकड़ा गया यह सुनकर शचीन और कई एक आदमियों ने बनारस से बंगाल जाना तय किया। इसके दोचार रोज बाद ख़बर मिली कि मेरे आशैशव और यौवन के मित्र असाधारण स्वार्थत्यागी वीरकर्मा 'श्री' को हवड़ा स्टेशन पर पुलिस ने पकड़ लिया है। उस समय बंगाल ही जाना ठीक हुआ। फिर 'बंगाल' को साथ में लेकर काशी से चन्दननगर रवाना हुआ; चन्दननगर में जो गाड़ी खूब सबेरे पहुंचती है उसी से गया। मगरा स्टेशन पर पशुपति बाबू प्रतीक्षा करेंगे वहां पहुंचकर पशु, बंगाल, और मैं त्रिवेणी से नाव पर चन्दननगर जायेंगे यह स्थिर हुआ था। मगरा स्टेशन पर गाड़ी सुबह चार बजे पहुंची। उतर रहा था उसी समय पशुपति ने आकर कहा आंधी पानी के कारण नाव नहीं मिली, इसीलिये सीधे चन्दननगर जाना पड़ेगा। चन्दननगर स्टेशन में ब्रिटिश गवर्नमेंट हमेशा कुछ डिटेकटिव रख छोड़ती है लेकिन कोई उपाय नहीं। वहीं उतरना पड़ेगा। मैंने कहा कि मैं आगे चलूंगा मेरे पीछे दोनों जने आना, वहां पहुँचकर एक हाथ Loaded pistol जहां पर है ठीक वहां रखकर दूसरे हाथ में टिकट लेकर धीरे धीरे बाहर गया। दुपट्टे से अच्छी तरह मुंह और सिर लपेट लिया था। एक गोयेन्दा स्टेशन में बेंच पर पड़ा हुआ खूब सो रहा था, और कोई नहीं था, टिकट कलेक्टर मेरा परिचित था, टिकिट लेते समय ज़रा हंसता हुआ सा मालूम पड़ा। उन्होंने शायद मुझे पहचान लिया था। वहां से चलकर हमारे घर के पास ही एक मित्र के वहाँ मैं ठहरा। फिर वहां से शाम को गाड़ी में बैठ कर चन्दननगर के बाज़ार के पास ही 'ए' के घर में उतरा वहां और दोनों भाई प्रतीक्षा में बैठे थे, रात भर बैठकर बातें हुईं फिर ठीक हुआ कि हम विदेश चले जायं।

१९१४ में भी एक बार मेरे विदेश जाने की बात हुई थी। मेरे मित्रों की राय में यही बात आती थी। उस समय जहाज का टिकट खरीदा जा चुका था; पर मेरी हालत उस समय विचित्र थी। मैं ज्यादातर Intuition पर निर्भर रह कर काम किया करता था, इसी लिये मुझे कभी कभी Inconsistent होना पड़ता था। एक लड़के ने

मुझे टिकट ला दिया उस समय मैं छत पर बैठा था, मेरा मित्र 'श्री' भी मेरे पास था। और एक लड़का भी वहां खड़ा था न मालूम मुझे क्या ख्याल हुआ कि मैंने 'श्री' की ओर देख कर कहा 'भाई, मैं अभी विदेश नहीं जाऊंगा फिर एक बार कोशिश करूँगा।" यह कह कर मैंने टिकट फाड़ डाला। श्री मेरे लिये बड़ा चिन्तित था, उसके समझाने पर मैं विदेश जाने को राज़ी था, उस समय गवर्नमेंट मुझे पकड़ने की खूब कोशिश करती थी, सब बड़े ९ स्टेशनों पर मेरा फोटो लटकाया गया था, मुझे पकड़वा देने पर पुरस्कार मिलने की बात थी। श्री मेरे स्वभाव से परिचित था, मैं जब विदेश जाने पर राज़ी न हुआ, तब मुझे समझाना वृथा था, इसलिये श्री भी चुप होगया। लेकिन इस बार मैंने ही विदेश जाना स्थिर किया। इसके कारण दो थे। एक यह कि मैंने अपने Experience से देखा कि केवल देशी सिपाहियों से उस समय Revolution नहीं हो सकता था। Civilian लोग अस्त्र शस्त्र और गोलाबारूद काफ़ी न पाने पर कभी भी Success full Revolution नहीं कर सकेंगे। लाहौर में हम लोगों के (अर्थात Civil population के हाथ में काफ़ी गोला बारूद, अस्त्र शस्त्र आदि चीजें होतीं तो सरकार द्वारा हमारे दल के सिपाहियों के पकड़े जाने पर भी हम लोग (Civilian) विप्लव शुरू कर दे सकते थे। हम लोगों का जनबल और Disciplined Organisations था किन्तु arms नहीं थे। शस्त्र के लिये हमने अपने देशी सिपाहियों पर भरोसा किया था। इस लिये जब वे लोग पकड़े गये तब हम लोग कुछ नहीं कर सके। भविष्यत में सिपाहियों की प्रत्यक्ष सहायता न मिलने पर भी हम लोग काम कर सकें इस लिये Arms and ammunition विदेश से लाना पड़ेगा; अन्यथा काम नहीं चलेगा।

मेरी ऐसी इच्छा थी कि दूसरी बार कोशिश करने के पहले देश को small arms से ढांक दूंगा। इस उद्देश को सामने रख कर मैंने विदेश जाना स्थिर किया था।

* * * *

दूसरा उद्देश्य रुपयों का प्रबन्ध करना था। यहां पर आज तक यह अनुभव हुआ था कि चोरी, डाका से विप्लव के लिये रुपया इकट्ठा नहीं हो सकता है। इसके सिवाय २१४ आदमियों को छोड़ कर और कोई धनवान इस काम के लिये रुपया नहीं देगा।

* * * *

यह प्रश्न उठ सकता है कि विदेशी हमको रुपया और अस्त्र शस्त्र क्यों देंगे? इसका उत्तर यह है कि इसमें उन लोगों का स्वार्थ है इस लिये वे हमारी सहायता करेंगे। युद्ध के समय जर्मनों ने भारतीयों को रुपया और अस्त्र शस्त्र क्यों नहीं दिया था? अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में यह एक रहस्यमय बात है; जो आज मित्र है वह कल शत्रु हो जाता है और उसका प्रत्येक काम, व्यवहार स्वार्थपूर्ण होता है। कई एक साल पहले अंग्रेज जर्मन को शत्रु समझता था; और आज वही इंगलैण्ड जर्मन के साथ मित्रता करने के लिये व्यस्त है। यह हम लोगों को याद रखना चाहिए कि अंगरेज बहुतों के शत्रु हैं वे उनका पतन चाहते हैं। इसलिये वे भारतीयों को सहायता देंगे इसमें क्या आश्चर्य है?

विदेश जाना ठीक हुआ लेकिन यह रुपयों के बिना नहीं हो सकता था। रुपयों का प्रबन्ध करने में कुछ समय लग जाना स्वाभाविक था।

अतः तब तक मैं किसी निरापद स्थान में रहूं यही तै हुआ। नवद्वीप तीर्थस्थान है, लेकिन वहाँ लोग कम जाते हैं, कुछ रोज तक वहां रहना ठीक हुआ। इसके सिवाय उन दिनों में हमारे दल का एक आदमी वहाँ था, उसकी राय में वहीं रहना निरापद है। सब ठीक करके खूब सवेरे 'प' के घर से 'क' के घर में गया।

'क' के घर में दूपहर के समय उसका कोई आत्मीय आया, मैं उस समय भट्टाचार्य ब्राह्मण बना था। दूसरे दिन ६।७ भाइयों को लिये हुए नाव पर त्रिवेणी में गया; वहां पर भोजन के बाद पशुपति के सिवाय और सबको लौटा दिया। पशुपति बहुत ही दुःसाहसी था, वह आग में कूदने के लिये हमेशा तयार रहता था। पशुपति के न होने से बहुत दफे हमें विपद् का सामना करना पड़ा था; वह जैसा निर्भीक था वैसा ही बुद्धिमान था। उसको साथ में लेकर ट्रेन से नवद्वीप पहुंचा।

* * * *

"ठाकुर" उस समय वहाँ था, थोड़ी देर तक आराम करके फिर मकान ढूँढ़ने निकला; किराये पर एक मकान लिया और उसमें एक महीने तक ठहरा। 'ठाकुर' को वहां से रुपयों के लिये ढाका भेज दिया; मरहठा लड़का मेरे पास आकर रहने लगा। पशु चन्दननगर को लौट गया। मरहठा लड़का बंगला बोल सकता था लेकिन ठीक ठीक नहीं बोल सकता था इसलिये उसे बाजार भेजना ठीक न था। मकान का मालिक बैरागी था उसे मछली लेने भेजा लेकिन वह राजी नहीं हुआ। २।४ बार कहने पर वह चला गया। तब फिर रोज़ जाता था, एक रोज उसे मछली खाने को दी थी। उसने खुशी से खा भी ली। यही वह आदमी था जो मछली लाने में एतराज करता था इस घटना से हमारे समाज की दशा समझ में आ जाती है।

* * * *

हम लोग जिस समय नवद्वीप में थे उस समय बहुत से भाई आते जाते थे उनमें प्रतापसिंह ही की कुछ बातें कहूँगा। प्रताप के बाप, चाचा, दादा सब कोई देश के लिये आत्मदान कर चुके हैं। प्रताप के साथ मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध था पण्डित अर्जुनलाल सेठी जी की Recommendation लेकर प्रताप और उसके बहनोई अन्य दो लड़कों के साथ देशसेवा करने के लिये दिल्ली के मास्टर अमीचन्द जी के पास १९१३ में आये थे। मुझे देखते ही अमीचन्द ने हँस कर कहा था" बाबू जी मैं आपके लिये ४ बड़े देशप्रेमिक यहां ले आया हूं।" मैं उस रोज दिल्ली से जाने वाला था इसलिये उन लोगों ने मेरे लिये राज-पुताने के ढङ्ग की रोटी तरकारी बना कर रखी थी। मैंने अवधविहारी को एक काम से बाहर भेजा था; वहां पर प्रताप को देखा तो मालूम हुआ कि उसकी आंखों से आग निकल रही है। प्रतापसिंह प्रकृति ही सिंह था। मेरे विदेश जाने का कारण प्रताप को कहने पर वह रो दिया था, उसे यह बड़ा दुःख था कि बहुत दिन मुझे देख नहीं पायगा। प्रताप के साथ मेरा वही शेष साक्षात था, प्रताप अब इस जगत में नहीं है, जेल में ही प्रताप पृथिवी छोड़कर स्वर्ग में चला गया, जहाँ की चीज़ थी वहीं चली गई।

* * * *

'ठाकुर' ने ढाका से गिरिजा बाबू को मेरे पास भेज दिया; गिरिजा बाबू शचीन और पशुपति से परामर्श करने पर यह तै पाया कि चन्दन नगर से कलकत्ता जाया जाय! मैं पशुपति को साथ में लेकर नवद्वीप से चुंचुड़ा स्टेशन से घोड़ागाड़ी पर चन्दननगर के सीमान्त पर गया। वहां से पैदल 'ए' के घर में गया। "ए" के साथ परामर्श करके दूसरे दिन शाम को शचीन और गिरिजा को लेकर नाव से गंगापार करके कांचड़ापाड़ा स्टेशन से रेल पर सवार होकर कलकत्ते गया। वहाँ गिरिजा बाबू के परिचित एक मित्र के यहां ठहरा।—

क्रमशः
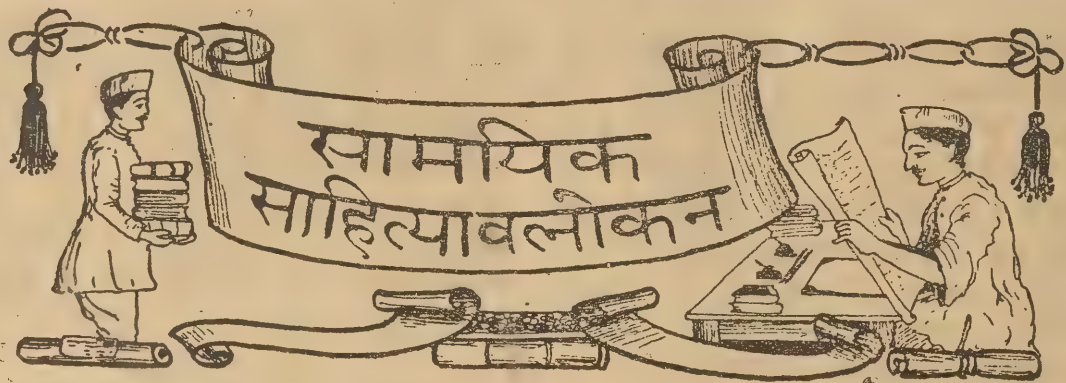
दर्शन परिचय—लेखक श्रीयुक्त पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी । प्रकाशक निहालचन्द एण्ड कम्पनी १, नारायणप्रसाद बाबूलेन, कलकत्ता । मूल्य २) रेशमी जिल्द २॥)

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी ने इस पुस्तक को बहुत अच्छे ढङ्ग से लिखा है । पुस्तक-लेखन में परिश्रम किया गया है तथा क्रम निर्म्माण करने में लेखक ने वैज्ञानिक रीति का पूर्ण उपयोग किया है । पुस्तक अपने विषय की अनूठी है । त्रिवेदी जी संसार भर के दर्शन शास्त्रों का परिचय दस भागों में लिखना चाहते हैं । हमारे सामने इस समय केवल प्रथम भाग है । प्रथम भाग में लेखक महाशय ने जिस सुचारु रूप से विषयों को क्रमबद्ध किया है वह प्रशंसनीय है । पण्डित रामगोविन्दजी ऐसी अच्छी पुस्तिका लिखने के लिये साधुवाद के पात्र हैं । आशा है वे हिन्दी में दर्शन साहित्य विषयक कमी को पूरा करने का कष्ट उठाएंगे । कहीं कहीं लेखक महाशय ने जो मत प्रकट किया है उससे हम सहमत नहीं हैं । दर्शन और फ़िलासफ़ी का भेद बतलाते हुए आप कहते हैं; पाश्चात्य फ़िलासफ़ी का कहना है—प्रकृति के सिर सवार होकर उसे जीत लेना चाहिये । मतलब यह कि जब मनुष्य प्रकृति के तत्वों को खोज ढूंढ़ कर अपने जीवन में उनका उपयोग करने लग जाता है तभी वह सुख शान्ति की सुशीतल शैय्या पर शयन करता है ।......इन बातों पर विचार करने से स्पष्ट मालूम होता है कि दर्शन और फ़िलासफ़ी में बहुत फ़र्क है । बाहरी जगत् की उन्नति कर पूरे आनन्द की प्राप्ति की अभिलाषा, प्राच्य दर्शन में मृगमरीचिका है और संसार को दुखमय बता कर केवल आत्मज्ञान के लिये ही कष्ट उठाना पाश्चात्य फ़िलासफ़ी में निष्प्रयोजन है......इसलिये दर्शन और फ़िलासफ़ी में अन्तर है ।" पाश्चात्य फ़िलासफ़ी का यह चित्रण असन्तोषप्रद है । जहाँ तक नीतिशास्त्र (या सदाचार शास्त्र) का ताल्लुक़ है वहाँ तक, [पूर्व और पश्चिम के Metaphysical concepts (आध्यात्मिक धारणाओं) में अन्तर होने के कारण] आचारसम्बन्धी नियमों में अन्तर हो सकता है, परन्तु पाश्चात्य फ़िलासफ़ी को "सुख शान्ति की सुशीतल शैय्या पर शयन करने" की उपदेशिका बतलाना बेचारी उस फ़िलासफ़ी का खासा अच्छा मज़ाक उड़ाना है । कान्ट का Idealism तो बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद की टक्कर का है—और जहाँ तक क्रमबद्ध (systematic) विचारशैली का ताल्लुक़ है वह उनसे भी बढ़ कर है । अरिस्टाटल के Ethics और Æsthetics के एकीकरण में वह खूबी है कि 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम" की याद आ जाती है । ख़ैर । पण्डित रामगोविन्दजी ने पुस्तक के लिखने में बहुत अधिक परिश्रम किया है । उनका अध्ययन और पांडित्य प्रशंनीय है । उनकी लेखन-शैली सादी और ग्राह्य है । हम दर्शनप्रेमियों से अनुरोध करेंगे कि वे एक बार इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें । हाँ, इस ग्रन्थ के विषय में हम एक बात भूल जाते थे । लेखक महाशय ने तो शायद नहीं—पर प्रकाशक महाशय की प्रखर और तीक्ष्ण बुद्धि ने वह

अनूठा काम किया है कि जिसकी तारीफ़ नहीं की जा सकती। पाठकों ने सांख्यकार महर्षि कपिल तथा योगसूत्र के रचयिता महर्षि पतञ्जलि का नाम ही नाम सुना होगा परन्तु इस पुस्तक में उनके चित्र भी मौजूद हैं !! धन्य है !! यह वह सूझ है कि किसी पुरातत्ववेत्ता की पैनी अक्ल भी जिसे पाने को तरसा करती है !!! मालूम नहीं ऐसे सुन्दर और उपयोगी ग्रन्थों के साथ हिन्दी प्रकाशक—विशेष कर कलकत्ता के प्रकाशक ऐसा भद्दा मज़ाक़ क्यों करते हैं ?

सच्चिदानन्द—लेखक ठाकुर कल्याणसिंह बी० ए०। प्रकाशक हिन्दी पुस्तक भवन, १८१ हरीसन रोड, कलकत्ता। मूल्य १।।)

यह उपन्यास देश की वर्तमान दशा और सामाजिक विशृंखलता का चित्रण करता है। लेखन शैली से प्रतीत होता है कि लेखक महाशय की भाषा परिमार्जित तथा कथानक को वृद्धिङ्गत करने का ढङ्ग प्राढ़ता लिये हुए है। पुस्तक रोचक है। आशा है ठाकुर साहब अपनी साहित्य सेवा की भावना को मुरझाने न देंगे। हम अनुरोध करते हैं कि वे प्रसिद्ध पाश्चात्य उपन्यास लेखकों की कृतियों को हृदयङ्गम करने का कष्ट उठावें। इससे विचारों में विविधता और प्रौढ़ता आएगी।

पथ्य—लेखक श्रीयुक्त व्यास पूनमचन्द तनसुख वैद्य। प्रकाशक श्री मीठालाल व्यास, ब्यावर, राजपूताना। मूल्य १)

जैसा कि नाम ही से प्रकट है यह पुस्तक खान पान निर्देशिका है। पुस्तक लिखने में व्यासजी ने काफ़ी परिश्रम किया है। देश के रुग्ण श्रीमानों को वैद्य जी के इन शब्दों पर ध्यान देना चाहिये। "आज जो रसोइया धुआं धार चरपराहट और तमतमाहट वाले शाक बनाता है तथा कई प्रकार के स्वादिष्ट पकवान बनाना जानता है वह होशियारों में गिना जाता है। उसकी सब जगह प्रतिष्ठा होती है".........परन्तु कोई इस बात का विचार नहीं करता कि ऐसे स्वादिष्ट किन्तु अप्राकृतिक पदार्थों से शरीर को क्या लाभ और क्या हानि पहुँचती है। लोगों ने स्वाद ही को गुण मान लिया है, पर यह ग़लत है। हम लेखक की एक एक बात से सहमत हैं। हमारा जीवन कितना अप्राकृतिक हो रहा है—विशेषकर हमारे श्रीमानों का यह हमारे उनके नैत्यिक भोजनपान के अवलोकन से प्रकट हो जाता है। आशा है पूनमचन्द जी की पुस्तक का समुचित आदर होगा।

माया—लेखक श्री रामगोपाल मिश्र। कमर्शल प्रेस जुही कानपुर से प्राप्त मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक एक दुःखान्त उपन्यास है। पुस्तक अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है। पुस्तक की भाषा में सरलता है, परन्तु अननुभवजन्य थोड़ा सा बेजोड़पन भी है। हम आशा करते हैं कि लेखक महाशय किसी समय अच्छा लिखने लगेंगे।

चन्द्रभवन—लेखक वही, मिलने का पता भी वही। मूल्य एक रुपया।

हमारी सामाजिक कुरीतियों का जितने रूप में, जै बार, जितना अधिक वर्णन किया जाय थोड़ा है। मिश्र जी ने प्रस्तुत पुस्तक में हमारी स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का चित्र खींचा है। सहानुभूति, विद्रोह और सुधारेच्छा का अच्छा सम्पुट है। पुस्तक पढ़ने लायक है।

---

(१) चोखे चौपदे (२) चुभते चौपदे—लेखक पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय। प्रकाशक खड्गविलास प्रेस, बाकरगंज, पटना। मूल्य दोनों का १।।)

पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय हिन्दी के वयोवृद्ध सेवी हैं। उनकी "प्रियप्रवास" सी अनूठी भावमयी अमर कृति हिन्दी को विभूषित कर चुकी है। आज हमारे सामने उनके चोखे चौपदे और चुभते चौपदे ये दोनों ग्रन्थ रक्खे हैं। हम चौपदे पढ़े पढ़ते पढ़ते मन ही मन विचार करने लगा कि क्या "प्रियप्रवास" और इन चौपदों के रचयिता एक

ही हैं ? भाषा पर कैसा अपूर्व प्रभुत्व है !! मुहाविरों पर आपने कैसा अटल साम्राज्य स्थापित कर रक्खा है !! भाषा की जिमनास्टिक की दृष्टि से ये दोनों ग्रन्थ हिन्दी में अपना सानी नहीं रखते। शुद्ध मुहाविरों का प्रयोग इतना अधिक संख्या में आज तक हिन्दी के किसी भी कवि ने नहीं किया। हमें अँग्रेज़ी साहित्य का भी थोड़ा बहुत ज्ञान है । हमें विश्वास है कि किसी भी अंग्रेज़ कवि ने केवल बोलचाल के मुहाविरों में काव्यरचना नहीं की। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसिद्ध प्रकृतिपूजक कवि वर्ड्सवर्थ का आदर्श यह था कि पद्य की भाषा (Poetic Diction) बोलचाल की भाषा होनी चाहिये। पर, वर्ड्सवर्थ ने स्वप्न में भी यह ख़याल न किया होगा कि वह मुहाविरों (Idioms) में काव्य रचना करे। पंडित अयोध्यासिंह जी ने वह दुस्तर कार्य्य किया है—सफलता के साथ। परन्तु, क्या यह कविता है ? क्या वर्ड्सवर्थ की I measured it from side to side It was four feet long and three feet wide ये पंक्तियाँ कविता हैं ? क्या वर्ड्सवर्थ का एक्सकर्शन्स भी कविता है ? जैसा कि हमने पहले ही कह दिया कि सरल भाषा विषयक नट विद्या (Gymnastic) है। हमें इसमें स्थायी साहित्य की रंच मात्र भी झलक दिखलाई नहीं देती।

हम शब्दों के संकेत (Suggestion) से किंवा मुहाविरों की अर्थ-प्रेरणा से अन्तरतल की निर्गुण वीणा के झंकरित हो उठने की बात समझ सकते हैं; परन्तु बिलकुल गद्यमय (Prosaic) भावों को लगातार छन्दोबद्ध करते जाने की बात हमारी समझ में नहीं आती। किसी शब्द या मुहाविरे की प्रथम संकेतमय ध्वनि में जो कविता (यदि वह शब्द या मुहाविरा इस प्रकार के काव्यमय क्षणों में हृदयङ्गम किया गया हो तो)—जो कविता रहती है वह मुहाविरों को शिकार करने की तलाश में सतत रहने से नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। फिर तो यह कविता नहीं एक खासी अच्छी वस्तूपपाद्य और प्रमेयोपपाद्य साध्य हो जाती है। इस प्रकार का शब्द सङ्कलन "स्वान्त:सुखाय" ही यदि कोई करे तो सुखेन करे, परन्तु यह आशा करना कि इस प्रकार की पुस्तकें साहित्य में बहुत काल तक जीवित रहेंगी, अथवा वे भविष्य के लिये सन्देशवाहक होंगी, बिलकुल दुराशामात्र है काव्य साहित्य में तो इन पुस्तकों का कोई स्थान नहीं है—हाँ कोश-साहित्य (Lescicography) में इनका आदरणीय स्थान ज़रूर रहेगा। भविष्य में यदि कोई कोशकार हिन्दी मुहाविरों का कोश बनाना चाहेगा तो उसे इन चुभते और चोखे चौपदों से बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

हमें भय है कि हमने छोटे मुँह बड़ी बात कही है। आदरास्पद उपाध्यायजी को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमने जो कुछ लिखा है वह उनके प्रति असम्मान भाव से प्रेरित होकर नहीं लिखा। हम समझते हैं कि साहित्य में स्पष्टवादिता और तथ्य-कथन की आवश्यकता है। हां ऐसा करने में वैयक्तिक आक्षेपों की बौछार करना कुरुचिपूर्ण अवश्य है। यदि हमने अनजान में ऐसा किया हो तो हम अभी से क्षमा प्रार्थी हैं। हम क्या करें ? बार बार हम यह अनुभव करते हैं कि "प्रियप्रवास" के करुणा विगलित गायक ने इन पुस्तिकाओं को लिख कर अपना समय नष्ट किया है। इसी लिये हमने उपर्युक्त बातें लिख दी हैं। आशा और विश्वास है उपाध्याय जी हमसे रुष्ट न होंगे।

अहिंसा तत्व—एक दीन द्वारा सङ्कलित तथा खड्गविलास प्रेस पटना से प्रकाशित मूल्य ।≠)

लेखक महाशय ने इस पुस्तक में अहिंसा तत्व का शास्त्रीय विवेचन किया है।" पुस्तक अपने विषय की अच्छी है। "अहिंसा प्राप्ति की साधना," "धैर्य्य की परमावश्यकता" "कठिन परीक्षा" "दीर्घ तपस्या की आवश्यकता" आदि परिच्छेद पठन करने और मनन करने तथा तदनुकूल आचरण करने योग्य हैं हम पाठकों से पुस्तक पढ़ने का अनुरोध करते हैं। पुस्तक की भाषा कुछ बेमुहाविरा है परन्तु पुस्तक के विवेचन की शैली हृदयग्राही है।

मौजी (साप्ताहिक)—सम्पादक श्री महादेवसिंह शर्मा एम० ए० १०५ हेरिसन रोड, कलकत्ता से प्रकाशित। वार्षिक मूल्य २)

मौजी साधारण पत्र है। हमने सुना है कि "मदन थियेटर्स" वालों ने 'मतवाले' की समालोचनाओं से तिलमिलाकर एक पत्र निकाला है। वह पत्र मौजी ही मालूम होता है। मौजी का मज़ाक़ खासा होता है। अग्रलेख और टिप्पणियाँ बहुत साधारण होती हैं। मदन-कम्पनी का पक्षपात करने में गालियाँ बकना और आपे से बाहर हो जाना इसका खास गुण है। हमें अफ़सोस इस बात का है कि चांदी की चपत अब पढ़े लिखों की ललित कला विषयक कसौटी (Standard of Æsthetics) भी बदल देने लगी। Remember, man is more than £. S. d's.
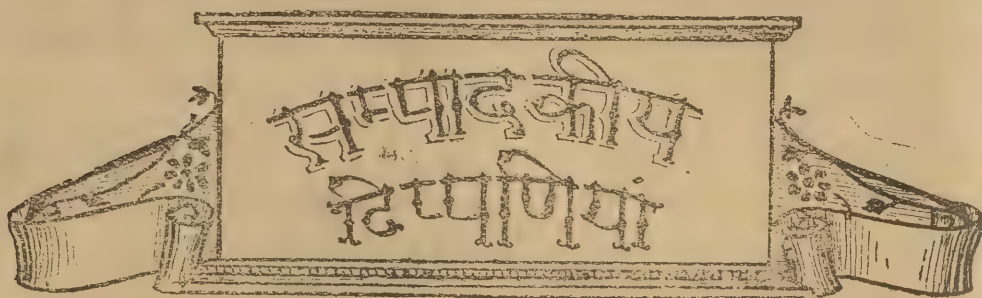
भविष्यवाणी की प्रतिमा।

For Gandhi is figure of Prophecy He is the oriental mystic become accidental man of Action. One feels, on holding in his conciousness these germ—thoughts of such infinite potency, that he is entertaining the seeds of a new age. ल्यूसियन प्राइस नामक विद्वान ने शान्ति-उपासक महामना रोमें रोलां की "महात्मा गान्धी" नामक पुस्तक की आलोचना करते हुए उपर्युक्त वाक्य कहे थे। उनका सारांश यह है: गान्धी भविष्य-वाणी की प्रतिमा है, वह प्राच्य मनस्वी पाश्चात्य कर्मयोगी में परिणत होगया है; ऐसी महान शक्ति के बीज भूत विचारों को हृदयस्थ कर लेने पर मनुष्य को ऐसा भासित होने लगता है मानों वह नवीन युग के विचार-बीजों को धारण किये हुए है।" जिस महात्मा की शान्त एवं अहिंसात्मक शिक्षा की इन शब्दों में प्रशंसा की गई है, उसी महात्मा ने कुछ दिनों से प्रहारक का रूप धारण कर लिया है। इधर प्रहार, उधर प्रहार और सर्वत्र प्रहार—इन प्रहारों के कारण देश में अशान्ति, असन्तोष और वादविवाद की वायु बह चली है। बहुत से हृदय उद्विग्न हैं, बहुत से हृदयों में विद्वेष की भावना जागृत हो गई है। कुछ दिन हुए महात्मा जी ने अपने पत्र यंगइण्डिया में "हिन्दू-मुस्लिम तनाजे" पर एक बड़ा लम्बा लेख लिखा था। उसी लेख में कुछ ऐसी बातें कही गई थीं जिनके कारण महात्मा जी पर बहुत से प्रहार हुए हैं, कई आर्य्यसमाजी देशसेवक दुखित हुए हैं और कई लोगों को महात्मा जी से अपना दिली बुग्ज निकालने का मौका मिल गया है। हिन्दू-मुस्लिम तनाजे पर लिखते हुए महात्मा जी ने इस मनमुटाव के मूल कारणों का दिग्दर्शन कराया है। इस सिलसिले में महात्मा जी ने आर्य्यसमाज ऋषि दयानन्द सर-

स्वती, सत्यार्थ प्रकाश, वेद और स्वामी श्रद्धानन्द पर कुछ ऐसे आक्षेप किये हैं जिन के कारण देश भर के आर्य्यसमाजी भाई क्रुद्ध हो उठे हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती की महानता, उनके अटल ब्रह्मचर्य्य और उनकी सुधारक वृत्ति को महात्मा जी ने आर्य्यसमाजी भाई इस पर बेतरह नाराज हैं। नाराज होने की बात भी है। जब हम किसी के धर्म्म पर आघात करते हैं तब यह बिलकुल स्वाभाविक है कि तद्धर्म्मावलम्बी समुदाय क्षुब्ध और कुपित हो। महात्मा जी ने सत्यार्थप्रकाश के

स्व० सर आशुतोष मुकर्जी.

मुक्तकण्ठ से सराहा है। इसके साथ ही उन्होंने स्वामी जी द्वारा प्रणीत "सत्यार्थ प्रकाश" नामक ग्रन्थ को Disappointing (निराशा-जनक) कहा है और ऋषि दयानन्द पर यह इल्जाम लगाया है कि उन्होंने हिन्दू-धर्म को संकुचित कर दिया। खण्डन-मण्डनात्मक अंश को निराशाजनक कहा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि "सत्यार्थ प्रकाश" का खंडन मंडनात्मक भाग का कुछ हिस्सा ऋषि दयानन्द ने नहीं लिखा। वह भाग स्वामी जी के किसी अन्य पट्ट शिष्य ने

लिखा था। अतः यदि युगधर्म्म के प्रभाव के कारण पुस्तक के उस भाग में कुछ अनुदारता आगई है तो उससे इन्कार करने की जरूरत ? उस समय, जब कि नीलकण्ठ शास्त्री जैसे विद्वान विधर्मी हो रहे थे। ऋषि दयानन्द के सदृश महान आत्मा ने अवतरित होकर हिन्दू धर्म्म की रक्षा की थी। वे दिन युद्ध के दिन थे। युद्ध में संकोच वृत्ति का प्रस्फुटित हो जाना कोई अनोखी बात तो है नहीं ? अतः हमारे आर्य्यसमाजी भाइयों को चाहिये कि वे आज सत्यार्थप्रकाश के खण्डनमण्डनात्मक भाग में अनुदारता, कटुता, या संकुचित तीव्रता का विद्यमान होना मानते हुए भी आर्य्यसमाजी और ऋषि दयानन्द के भक्त बने रह सकते हैं। 'सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग" उनके समाज विशेष का प्रथम नियम है। वेदों में विज्ञान के सिद्धान्त निहित हैं या नहीं-इस पर हम अपनी निज की कोई सम्मति नहीं दे सकते। हाँ श्री सातवलेकर जी अथर्ववेद में "निशाचर" शब्द का अर्थ Germs (कीटाणु) करके व्याधियों के उद्भव में कीटाणु-सिद्धान्त को वेदों में सन्निहित मानते हैं। यह निर्विवाद सिद्ध है कि ऋषि दयानन्द ने इस कलिकाल में वेदपूजा चलाई। सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा, उपनिषदादि के रचयिताओं के वेदपूजक, होने का प्रमाण देकर हम यह नहीं कह सकते कि वेदपूजा भारत में आर्य्यसभ्यता के आदि काल से प्रचलित है इसमें ऋषि दयानन्द ने कोई नई बात नहीं की। महात्मा जी यह नहीं कहते कि वेदपूजा अनादि काल से नहीं है। वे तो केवल वर्त्तमान में स्वामी जी को वेदपूजा का आद्याचार्य्य मानते हैं। स्वामी जी के ऊपर हिन्दूधर्म्म के संकुचित करने का दोषारोपण करना ठीक है या नहीं इसकी मीमांसा करना व्यर्थ है। वह महात्मा जी की अपनी राय है। स्वामी जी के समाजसुधार के कार्य्यों की लिस्ट गिनवाकर भी यह सिद्ध करना कठिन पड़ जायगा कि उन्होंने धार्म्मिक अनुदारता से काम नहीं लिया। जहाँ अपनेपन का भाव होता है, जहाँ वत्सलता, भक्ति और रक्षा के भाव रहते हैं, वहाँ अनुदारता का होना स्वाभाविक है। स्वामी दयानन्द हिन्दूधर्म्म (आर्य्य धर्म्म आर्य्यसभ्यता और आर्य्यसदाचार) के पुनः संस्थापक और रक्षक थे। यदि उन्होंने अपनी चीज़ को सर्वश्रेष्ठ माना यदि उन्होंने वेदशास्त्रेतर ग्रन्थों को त्याज्य समझा और हिन्दू धर्मान्तरगत प्रचलित सैकड़ों मत मतान्तरों को वेद-अविहित माना तो इस का कारण केवल यही है कि वे उस समय के असहानुभूतिपूर्ण दुष्ट समालोचकों से अपने धर्म की रक्षा करना चाहते थे और अपने धर्म को इतना उज्वल, इतना तर्कयुक्त और इतना बौद्धिक (Intellectual) बना देना चाहते थे कि फिर किसी छिद्रान्वेषी की हिम्मत न पड़े कि वह उस पर कुठाराघात कर सके। इसी भावना से प्रेरित होकर ऋषि दयानन्द ने भक्तिमार्ग, सेवामार्ग उपासनामार्ग आदि मार्गों को [इनके भाव-युक्त अथच अतर्कपूर्ण (Emotional and consequently non-rational) होने के कारण] वैदिक सत्यता से परे कहा है। यदि महात्मा जी ने इन सब बातों पर विचार करके यह लिख दिया कि आर्य समाज के आदरणीय प्रवर्त्तक ने हिन्दूधर्म को संकुचित बना दिया तो कोई ऐसी बात नहीं कही जिससे किसी धार्मिक आर्यसमाजी भाई को कष्ट पहुंचे। परन्तु प्रहार की तीव्रता हमें विचार करने का मौका कम देती है। प्रहार के बाद प्रतिप्रहार की भावना जागृत हो जाती है। हमारे बहुत से आर्यसमाजी भाई इसी वृत्ति से प्रेरित हो उठे हैं इस में रंचमात्र भी संदेह नहीं। हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि महात्मा जी ने आर्यसमाज एवं आर्यसमाज के प्रवर्त्तक के प्रति जो कुछ कहा वह अत्यन्त मित्र भाव से कहा है। उनके कथन में एक आलोचक की तीव्रता नहीं है—वरन एक मित्र की शुभ कामना की चटपटी है। इसी प्रकार महात्मा जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति जो कुछ विचार व्यक्त किये हैं वे एक मित्र के तथा हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के चिन्तक के नाते से किये हैं।

इसमें किसी प्रकार की वैयक्तिक कटुता नहीं है।

महात्मा जी ने आर्यसमाजियों तथा मुसलमानों की शिकायतों का ज़िक्र करते हुए कहा है कि "मुझ से कहा गया है कि आर्यसमाजी और मुसलमान औरतें भगा ले जाया करते हैं।" इस वाक्य पर पत्रों में बड़ी टीका टिप्पणी की गई। महात्मा जी ने यह वाक्य लिखकर अपनी सरलता और सीधे पन का परिचय दिया—इसके अलावा और क्या कहा जाय? हम नियमित रूप से समाचारपत्र पढ़ते रहते हैं। हमने आजतक एक भी ऐसी खबर नहीं पढ़ी कि आर्यसमाजी मुसलमान औरतें भगा ले जाया करते हैं। हमारा विश्वास है कि हिंदू समाज का सदाचार इस बात को हर्गिज़ गवारा नहीं करेगा कि आर्यसमाज के सदृश एक जीवित जाग्रत संस्था ऐसा घृणित काम करे। महात्मा जी ने यह सुनी हुई बात क्यों लिख दी? क्या सतर्क और उत्तरदायी पत्र-सम्पादक का यह धर्म है कि वह जो कुछ सुने उसे लिख दे। महात्मा जी ने बाद में कहा है कि मुझ से ऐसा कहा जाता था और यदि मैं यह बात न लिखता तो मामला साफ कैसे होता? हम समझते हैं कि महात्मा जी का यह कारण बिलकुल व्यर्थ सा है। इसके क्या मानी हैं कि आप किसी मसले को साफ करने के लिए उसे अपने अखबार में छाप दें—बिला इस बात की पर्वाह किये कि इसका देश पर क्या असर पड़ेगा? यदि इस मामले को साफ ही कराना था तो इसे प्रश्नवाचक रूप में रखने या आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं, आर्यप्रतिनिधि सभाओं तथा शिकायत करनेवालों से प्रमाण पेश करने या इसका स्पष्टीकरण करने के लिये कहते।

* * *

उपर्युक्त टिप्पणी में हमने उन बातों का उल्लेख कर दिया जिनके कारण देश में खलबली मची हुई है—या यों कहें कि थी। अब हम महात्मा के उस विशद, स्पष्ट, निर्भीक तथा पूर्ण आशा से पूरित लेख की ओर आते हैं। पाठक जानते हैं कि महात्मा गांधी के पकड़े जाने के बाद ही से देश में हिन्दू मुसलिम विद्वेष की आग भड़की थी। कहते हैं आग भड़की थी पंजाब में परन्तु उसकी चिनगारी देश भर में उड़ी और हिंदू मुसलिम ऐक्य के नव पल्लवित पौधे को स्वाहा करने लगी। देश में आजतक कई नेताओं का राज्य रहा। कई नेताओं ने इस हिंदू-मुस्लिम विद्वेष के दूर करने की बात कही। सभी कहते थे। पर, इस बार महात्मा गांधी ने जो कुछ कहा वह इतना लोकोत्तर इतना असाधारण और इतना

स्व० सर आशुतोष चौधरी.

ऊंचा है कि स्वप्न देखने की उत्कण्ठा रखने वाले बिगड़े दिमाग शायर भी उस कथन की अपूर्व कविता और अत्यंत करणीय व्यावहारिकता देखकर दंग रह गए हैं। देश की सद्यः परिस्थिति का इतना अच्छा विश्लेषण और हिंदू मुसलिम विद्वेष को दूर करने का जो हल महात्मा जी ने बतलाया है वही सत्य—पूर्ण सत्य—है। विद्वेष का कारण महात्मा जी की राय में लोगों का अहिंसा से घबड़ा उठना है। महात्मा जी कहते हैं "अहिंसा की यह नफरत अकेले मुसलमानों में देखी जाती हो सो बात नहीं। मेरे हिंदू दोस्तों ने भी ऐसी ही बातें बल्कि जियादह जोश के साथ कही हैं। ......मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिंसा की एक जबरदस्त लहर उठती चली आ रही है। हिन्दू मुसलमानों का तनाजा अहिंसा के मुतअल्लिक फैली बेदिली को एक शकल है।" इसके बाद महात्मा जी ने एक "अटलशर्त" का ज़िक्र किया है। आप कहते हैं "मेरी राय में दोनों कौमों के बाहमी ताल्लुकात के लिये अहिंसा का इस्तेमाल एक ऐसी अटल शर्त है जो इसे तनाजे का इलाज करने के लिये किसी भी ठहराव की पेशबन्दी लिये ज़रूरी है। दोनों क़ौमों में इतना समझौता आम तौर पर ज़रूर होना चाहिये कि कुछ भी हो जाय लेकिन दोनों में से एक भी फरीक मनमानी न करे और खुद ही कानून न बन बैठे। बल्कि जहाँ जहाँ और जब जब झगड़ा खड़ा हो जाय वहाँ झगड़े की तमाम बातों का फैसला या तो पंचायत की मार्फत हो, या, फरीकैन चाहें तो, अदालत में हो। जुदा जुदा क़ौमों के बाहमी ताल्लुकात के लिये तो अहिंसा के मानी सिर्फ इतने ही हैं—इससे अधिक नहीं।" इसके बाद महात्मा जी ने उन कारणों पर विचार किया है जो हिन्दू मुसलमानों में तनाजा पैदा करते हैं। महात्मा जी की राय में मुसलमान उमूमन, गुण्डा होता है और हिन्दू डरपोक। सहारनपुर के वाक़यात का जिक्र करते हुए महात्मा जी ने हिन्दुओं से कहा है कि उनके लिये भाग खड़े होने की बात बड़ी लज्जास्पद है "मारना या नामर्दी के साथ भाग खड़ा होना इन दोनों में से यदि मुझे किसी एक बात को पसन्द करना पड़े तो मेरा उसूल कहता है कि मारने का-हिंसा का-रास्ता पसन्द करो।" महात्मा जी ने हिन्दुओं को कायरता का परित्याग करने का उपदेश दिया है। अपने लेख के अन्त में महात्मा जी कहते हैं :

मेरे नजदीक तो आज देश के सामने एक ही मसला ऐसा है जिसका निपटारा तुरंत होना चाहिए और वह है हिन्दू-मुसलमान का। जब तक इस दुःखी देश में हिन्दू मुसलमान की एक-दिली हमेशा के लिए नहीं होती तब तक मुझे तो कोई अच्छा फल मिलने की उम्मीद नहीं दिखाई देती। मैं यह भी मानता हूं कि ऐसी एकता जल्दी स्थापित की जा सकती है, क्योंकि यह बिल्कुल कुदरती और जीवन की तरह जरूरी है, और क्योंकि मनुष्य स्वभाव पर मुझे विश्वास है।......सारी हालत की कुंजी हिन्दुओं के हाथ में है। अगर हम अपने डरपोकपन और नामर्दी को खदेड़ देंगे; हम दूसरों पर विश्वास रखने लायक बहादुर बनेंगे तो सब लोग अच्छे हो जायंगे।"

अन्तरतम के विश्वास और मन मानस की आशा से प्रज्वलित इन शब्दों पर हम क्या टीका टिप्पणी करें? महात्मा ने इन शब्दों में भारतवर्ष की आशा, उसके विश्वास, उसकी अटल श्रद्धा और धर्मभावना का जो रूप दिखलाया है—हमें पूरा भरोसा है—उसे भारतवर्ष के सपूत देखेंगे और उसकी अर्चना करेंगे। हिन्दू मुस्लिम विद्वेष भारतवर्ष की मुक्ति-प्राप्ति में बाधक है। महात्मा जी का कथन है कि यदि आज हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य हो जाय तो सरकार विचलित हो उठेगी। क्या भारत सन्तानें अपनी कायरता और अपने गुण्डेपन को नहीं छोड़ सकतीं? यदि सतत प्रगति और उत्तरोत्तर विकास के कुछ अर्थ हैं तो यह निश्चित है कि भारत के हिन्दू और मुसलमान एक होंगे।

मार्च आन March on !!

जिस समय हम यह नोट लिख रहे हैं उस समय अहमदाबाद की अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक में भारत का भाग्य निर्णय हो रहा है। आज बरसों बाद वही लँगोटी धारी फिर अखाड़े में आए हैं। आज तक खबर इतनी आ गई है कि वे अपने प्रस्ताव अखिल भारतवर्षीय काँग्रेस कमेटी के सम्मुख पेश कर रहे हैं। जिन प्रस्तावों के पेश करने की महात्मा जी ने सूचना दी है वे प्रस्ताव यंग इण्डिया में छप चुके हैं। प्रस्तावों की गम्भीरता से पाठकों को अवगत कराने के लिये हम उनको नीचे ज्यों के त्यों दिये देते हैं:—

१—इस बात पर ध्यान रखते हुए कि स्वराज्य की स्थापना के लिए चरखा और हाथ कती-खादी के आवश्यक माने जाने पर भी और महासभा के द्वारा सविनय भंग के लिए पेशबन्दी के तौर उनकी स्वीकृति होते हुए भी देश की तमाम महासभा संस्थाओं के सदस्यों ने चरखा कातने पर अब तक ध्यान नहीं दिया है, यह महासमिति निश्चय करती है कि तमाम प्रतिनिधिक महासभा-संस्थाओं के सदस्यों को चाहिए कि वे, बीमारी अथवा लगातार सफर की हालत को छोड़कर, रोज कम से कम आध घण्टा चरखा कातें और कम से कम १० नंबर का १० तोला एक-सा और पक्का सूत अखिल भारतीय खादी-मण्डल के मन्त्री के पास भेज दें जो कि हर महीने की १५ ता० तक उन्हें मिल जाय, पहली किश्त १५ अगस्त १९२४ तक उनके पास पहुंच जाय और उसके बाद हर महीने बराबर भेजते रहें। जो सदस्य नियत तारीख तक नियत तादाद में सूत न भेजेगा उसका पद खाली समझा जायगा और और मामूल के मुआफ़िक उसकी जगह पर दूसरे सदस्य की तजवीज की जायगी तथा पद-च्युत शख्स अगले साधारण चुनाव तक फिर से चुने जाने का पात्र न समझा जायगा।

२—चूंकि इस बात की शिकायतें पहुंची हैं कि प्रान्तीय मन्त्री तथा महासभा के दूसरे पदाधिकारी उन हुक्मों की तामील नहीं करते हैं, जोकि महासभा के बाकायदा अफसरों की तरफ से उनके नाम समय समय पर भेजे जाते हैं, इस लिए महासमिति निश्चय करती है कि जो पदाधिकारी अपने बाकायदा मुकर्रर अफसरों के हुक्मों की तामील करने में गफलत करेगा वह अपनी जगह से खारिज समझा जायगा और इस की जगह पर मामूल के मुआफिक दूसरा शख्स

सर शंकर नायर.

तजवीज किया जायगा और वह पद-च्युत व्यक्ति अगले साधारण चुनाव तक फिर से चुन जाने का पात्र न समझा जायगा।

३—महासमिति की राय में यह बात वांछनीय है कि महासभा के निर्वाचक लोग सिर्फ उन्हीं लोगों को पदाधिकारी चुनें जो महासभा के विविध असहयोग प्रस्तावों के अनुसार, जिसमें पंचविध बहिष्कार अर्थात् मिल--कते कपड़ों, सरकारी अदालतों, स्कूलों, खिताबों और धारा सभाओं के बहिष्कार शामिल हैं, खुद चलते हों

और महासमिति यह निश्चय करती है कि जो सभ्य इन पांचों वहिष्कारों को न मानते हों और उनके मुताबिक न चलते हों वे अपनी जगहों से इस्तीफा दे दें और उन जगहों के लिए नया चुनाव किया जाय—इस्तीफा देने वाले सज्जन चाहें तो चुनाव के लिए फिर से उम्मीदवार हो सकते हैं।

४—महासमिति स्वर्गीय गोपीनाथ साहा के द्वारा किये गये श्री डे के खून पर अपना अफसोस जाहिर करती है और मृतात्मा के परिवार के प्रति अपना शोक प्रकट करती है और ऐसे खून जिस देश-प्रेम के कारण होते हैं—फिर वह भ्रांत ही क्यों न हो-उसका गहरा खयाल रखते हुए भी यह समिति ऐसे तमाम राजनैतिक खूनों की सख्त निन्दा करती है और जोर के साथ अपनी राय जाहिर करती है कि ऐसे ऐसे तमाम काम महासभा के ध्येय और उसके शान्तिमय असहयोग के प्रस्तावों के खिलाफ हैं और उसकी राय है कि ऐसे कामों से स्वराज्य का कदम पीछे हटता है और उस सविनय भङ्ग की तैयारी में बाधा डालता है जो कि महासमिति की राय में शुद्ध से शुद्ध बलिदान को उत्साहित करता है और जो पूर्ण शान्तिमय वायु-मण्डल में ही किया जा सकता है।

× × × ×

रुद्र रूप।

प्रथम प्रस्ताव को पेश करते हुए प्रशान्त महासागर में प्रलय आ गया था। एक एक वाक्य में, एक एक शब्द में, एक एक ध्वनि में, एक एक अक्षर में महा-प्रलय की भीम गर्जना सुनाई पड़ती थी। हां, प्रशान्त महासागर की लहरें प्रलय का गीत गाती थीं। "मैं एक हज़ार नौजवान—ऐसे नौजवान मांगता हूँ जो हमें कुचल डालने वाली सरकारी शक्ति को चुनौती दें। मैं दस हज़ार आदमियों को बलिवेदी पर चढ़ाने के लिये तैयार हूं।......मैं पूछता हूँ कि क्या तुम अपने करोड़ों भाइयों को जीवन दान देना चाहते हो? ....यदि हम एक चुनौती देने वाले निर्भीक राष्ट्र की सृष्टि करना चाहते हैं—यदि हम ऐसे राष्ट्र को उत्पन्न करना चाहते हैं जिसकी इच्छाशक्ति अत्यन्त दृढ़ हो तो हमें अपने ऊपर कठोरतम शासन करना होगा।" महात्मा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी में यों बोले। देशबन्धु दास, पण्डित मोतीलाल जी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद आदि नेताओं की राय में महात्मा जी का प्रस्ताव विधान विपरीत था। परन्तु कमेटी ने निश्चय किया कि महात्मा जी का प्रस्ताव नियमानुकूल है। अतः प्रस्ताव पर वोट लिये गए। वोट के समय स्वराज्य दल मीटिंग छोड़ कर चला गया था। महात्मा जी का प्रथम प्रस्ताव पास हुआ। परन्तु महात्मा जी ने देखा कि प्रस्ताव का वह अंश जिसमें सूत कात कर न भेजने वालों के पदच्युत हो जाने की बात कही गई है स्वराजवादियों के विरुद्ध वोट देने पर पास न हो सकता था। जब महात्मा जी ने यह देखा तो उन्होंने कमेटी को सलाह दी कि वह प्रस्ताव के उस अंश को वापस ले ले। कमेटी ने महात्मा जी के कथनानुसार कार्य किया है।

× × × × ×

अन्य प्रस्तावों का क्या हुआ सो अभी पता नहीं? "स्वैंट" का तार है कि अन्य प्रस्तावों पर महात्मा जी और स्वराज्य दल वालों का समझौता हो गया है।

सुरेन्द्र शर्म्मा द्वारा 'प्रताप' प्रेस कानपुर में मुद्रित,
तथा 'प्रभा' कार्यालय द्वारा प्रकाशित।

असली (यदि इसमें ८४ चित्र न हों या असली न हो तो कीमत वापस देंगे) रंगीन ८४ चित्र

पुराना

काश्मीरी कोकशास्त्र

सहित संपूर्ण

नकली पुस्तक को लोग २) २॥) रु० में बेच रहे हैं। उनको चिकनी-चुपड़ी बातों में पड़कर धोखे में न पड़ें। की० ३)

१,०००) रुपया माहवार कमा लो

इस पुस्तक में ५२८ हुनर ऐसे छपे हैं, जिनमें से एक भी अपने मतलब का चुन लिया जावे, तो १,०००) रुपया महीना कमाए जा सकते हैं मसलन गिल्ट साजी, फोटोग्राफी, दंदानसाजी, कुश्ते बनाना, बाल उड़ाने का तेल, पाउडर, साबुन, बाल काले करने का अँगरेजी ढँग का खिज़ाब और बाल उम्र-भर न पैदा होने का नुस्खा, मूछ बढ़ाने का तेल, हीरा-मूँगे बनाना, शीशा साफ करना, पत्थर जोड़ना, मोमबत्ती, शोरा, गन्धक के गिलास, आतशबाजी, हर तरह के साबुन इत्र, तेल, फुलेल, सब रङ्गों के कपड़े रंगना, अंगरेजी ढङ्ग के खाने, डबल रोटी, बिसकुट, मिठाई, विलायती पानी, अचार, मुरब्बे, चटनियां, तरह-तरह की बीमारियों के इलाज और नुस्खे १०८ बीमारियों की एक दवा का नुस्खा, सुरमे आदि ५२८ हुनर दर्ज हैं। मूल्य डाक-महसूल सहित सजिल्द १॥)

असली पुराना मिश्र का जादू सचित्र रंगीन संपूर्ण

(मिश्र-देश के प्रचलित जादू-विद्या की एक हस्त-लिखित पुस्तक का तर्जुमा) अपनी छाया सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों के संग करना (मूसा फरऊन के समय की विचित्र बातें आप मँगा करके देख लो)

(१) वशीकरण, (२) सूर्य वशीकरण, (३ चंद्र वशीकरण, (४) मंगल, (५) शनि वशीकरण आदि प्रत्येक ग्रह का वशीकरण और इसके सिवा अन्य कई चीजों के वशीकरण करने के लिये पूर्ण विधियों से युक्त चकित करने वाले नुस्खे दर्ज किये हैं। इसके सिवा हर तरह के साधन रोगों पर करना, चाहे कोई रोग हो और औषधि से लाभ न होता हो। घर बैठे और देशों की सैर करना, पवन में उड़ते फिरना, जिसको चाहना बस कर लेना, दृष्टि से गुप्त हो जाना, दूसरे रूप में प्रकट होना, दूर-दराज की वस्तु मँगवा लेना, देव, परी, जिन्नों को अपने अधिकार में रखना और इच्छानुसार उनसे काम लेना इत्यादि —तत्पश्चात् ऐसे साधन जो दैनिक आवश्यकताओं के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं। यदि यह पुस्तक लिखे अनुसार न हो तो वापस करदो। कीमत सजिल्द सिर्फ १॥) डाक-महसूल-सहित।

फरंगी और हिन्दुस्तानी मदारी अर्थात् भानमती का पिटारा।

यह पुस्तक योरुप व हिन्दुस्तानी मदारियों का पिटारा है। इसमें अंडे, बोतल, गिलास, फुलझड़ी, रुपया, ताश के हर प्रकार के खेल, भूत, प्रेत, जिन्न उतारना, अंधेरे में रोशनी, कर देना, मुंह से आग निकालना, हाथ पर आग रक्खें तो हाथ न जलें, मनुष्य को कत्ल करके जिन्दा कर देना, आम का बूटा, सरसों हाथों पर जमाना, बिना भट्ठी जुआर—चने भून लेना, आग पर खाना न पके, बंधे मनुष्य को छुड़ाना, कैदी की बेडी खुल जावे, कागज की कड़ाई में पकौड़े तलना, कमरे में हर रंग की रोशनी हो, जादू की स्याहियों के नुस्खे जिनसे लिखा हुआ अन्य मनुष्य पढ़ न सके और सैकड़ों तमाशे बहुत ही सरल रीति से लिखे हैं। मूल्य १॥) डाक-महसूल-सहित।

सच्ची करामात १॥), मुरदा रूहों से मुलाकात १॥), ज्योतिष-रत्न-भंडार १=), बूटी-प्रकाश १॥), इलाज: मुफ्ती १॥) वृक्षावली १॥) परलोक १॥) चरित्र-संग्रह १॥) चीन व बर्मा का जादू २), कामरूप देश का जादू १=), यक्षिणी-भैरव-साधनम् २।), स्त्री चिकित्सा १॥=), इंगलिश टीचर १।=) यह सब कीमतें डाक-महसूल सहित हैं।

मोहिनी रूप-वर्धक।

इसके उपयोग से रूप सुन्दर, चमकदार, लाल-लाल और कोमल निकल आता है। आकृति चाहे कैसी भद्दी और कुरूप हो इसके उपयोग से सेव के समान धक धक धधकती है। मंद-मंद सुगंधि आने से चित्त सदैव प्रसन्न रहता है। सुन्दरता पैदा करना और उसकी रक्षा करना इसका काम है। स्त्रियों और पुरुषों के लिये इसका उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। मूल्य १॥)

हुसनेलब [अर्थात होठों की सुन्दरता]

होठों की सुंदरता भी मुंह की सुंदरता से कम मन-मोहिनी नहीं है। कुरूप होठ सुंदर चेहरे के वास्ते कलंक का टीका है। हुसनेलब होठों को साफ, कोमल, लाल लाल और गुलाब के फूल के समान सुंदर सुगंध पैदा करता है। स्त्रियों के लिये इसका उपयोग अति आवश्यक है। मूल्य १।)

स्त्रियों के शरीर का रहस्य, क्या है ?

पुरुषों के वीर्य और औरतों के रज सम्बन्धी दोषों के लिए यह दवा

स्त्रियों के गुप्त रोग ही उनका सबसे बड़ा रहस्य है । लाखों स्त्रियाँ गुप्त रोगों का शिकार हैं मगर वे स्वयं नहीं जानतीं कि वह कौन सी व्याधि है जो दिन पर दिन उनकी तन्दुरुस्ती, उनकी सुन्दरता, उनके बदन की चुस्ती और उनकी उमंगों को खाये जाती है और उनसे तन्दुरुस्ती और सौन्दर्य की रक्षा कैसे कीजाय ! हम दावे के साथ कहते हैं कि स्त्रियाँ सब व्याधियों से सिर्फ एक दवा के सेवन से बच सकती हैं और वह हैः—

१६ दिन सेवन योग्य दवा का

जीवन प्रभा गुटिका

मूल्य १।।) डेढ़ रुपया

इस गुटिका के सेवन से—

स्त्रियाँ अपना खोया हुआ उत्साह, स्वास्थ्य, सौन्दर्य चुस्ती शीघ्र लौटा पायेंगी । इसे नित्य सुबह शाम खाने से स्त्रियों का प्रदर, गुप्त अंग से सफेद, गुलाबी, पीला या स्याह रंग का पतला पिचपिचा कुछ बदबूदार दूषित रज (पानीसा) आना, प्रसूत रोग, मासिकधर्म समय पर न होना या जल्दी २ होना, हाथ पैर तथा सर में दर्द और जलन, कमर का टूटना, आलस्य, शरीर का सूखना, मन्द मन्द ज्वर, काम काज में मन न लगना, आखों के सामने अन्धेरा आना, चक्कर आना, गर्भाशय की खराबी से गर्भ धारण न होना या गर्भ गिर जाने का डर, दूध कम या दूषित पैदा होना जिसे पीकर बच्चे भी काहिल और बीमार रहते हों, पतले दस्त, उत्साह की कमी आदि शिकायतें जल्द दूर होजाती हैं । जिन स्त्रियों को गर्भ न रहता हो वे स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर नित्य छः मासतक सेवन करें तो उनका वीर्य और रज शुद्ध होकर गर्भ धारण होता है क्योंकि यह गोलियां स्त्री पुरुष दोनों की कमजोरी को दूर करके सुखी बनाने के लिये रामवाण का काम देती हैं । यह दवा हर समय हर ऋतु में निःसंकोच खाई जाती है ।

१६ दिन दोनों समय सेवन करने योग्य दवा का मूल्य १।।) डेढ़ रुपया ।

पता—मिश्र का जीवन प्रभा आयुर्वेदीय औषधालय, नम्बर ८ फ़ीलखाना, कानपुर

वैद्यक दवाओं के लिए सिर्फ यह एक पता याद रखिएः—

मिश्र का जीवन प्रभा आयुर्वेदीय औषधालय, नं० ७ फीलखाना--कानपुर ।